गर्भनाल पत्रिका

संरक्षक मंडल

गर्भनाल न्यास का उद्यम

MPHIN/2011/55820

गर्भनाल पत्रिका

अंतरराष्ट्रीय विद्वत्समीक्षित मूल्यांकित मासिक शोध पत्रिका
(An International Peer Reviewed (Referred) Research Journal)

वर्ष-15, अंक-5 (इंटरनेट संस्करण : 224)

जुलाई 2025

सम्पर्क :
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत
ईमेल : garbhanal@ymail.com

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी सुषमा शर्मा के लिए अंश प्रिंट, एफ-1 करन अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 95, ई-8, त्रिलंगा, भोपाल द्वारा मुद्रित एवं डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल से प्रकाशित।

बिन पानी सब सून

जब तक पानी में तरंगें रहती हैं, उच्छल प्रवाह रहता है, तब तक यह जीवन का प्रतीक है। इसकी पारदर्शी परतों को सच्चाई से जोड़ कर देखा जाता है। यह मानव-कल्याण के लिए निःस्वार्थ भाव से बहता रहेगा। जब इसके प्रवाह को बलात रोक दिया जाता है तब यह पंक बन जाता है। गंदा-मटमैला पानी मर्त्यमान होता है। इसलिए पानी को बचा लें।

जीवन में रंगों का बहुत महत्त्व है, पर रंग सर्वत्र व सदा हों, ज़रूरी नहीं। बेरंग पदार्थ भी अमोल होते हैं, शायद इसलिए कुदरत के इस नायाब तोहफे को बिना रंग का रखा गया है। ऐसा पदार्थ जो सहजता से किसी भी रूप में ढलकर नया आकार ले ले, वह पानी है। वह पदार्थ जो किसी भी रंग में रंग जाए वह पानी है। जीवन में सामंजस्य की अद्भुत शक्ति और लचीले दृष्टिकोण की केंद्रिता को समझकर संवेदनाओं को तराशना कोई पानी से सीखे। बेसाख्ता, निर्विरोध बहने वाले जल का कोई रूप-रंग नहीं फिर भी यह इतना सुन्दर है कि हर कोई इसे अपने पास रखना चाहता है। अभिमान करने की तमाम वजहें हैं फिर भी अभिमानी नहीं। चराचर प्राणियों का जीवन पानी है क्योंकि पानी से ही उनका पोषण, संरक्षण और संवर्धन होता है। अंतरिक्ष में यह मेघ रूप में और ज़मीन पर नदी-निर्झर में प्रवहमान है। जल है तो जंगल है, जंगल है तो जल है। जल है तो जहान है, इसलिए तो वह भुवन कहलाता है। यह सबको प्रक्षालित कर शीतल और पवित्र करता है।

"रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून, पानी गए न ऊबरै मोटी मानुष चून," रहीम के इस दोहे में जीवन की सार्थकता छुपी हुई है। जब घर की चारदीवारी से निकल कर पानी, गांव-शहर और देश-विदेश में चर्चा-परिचर्चा का विषय बन चुका है। युद्ध की विभीषिका के पीछे भी नदी के जल को रोकना एक धमकी की तरह इस्तेमाल हुआ है क्योंकि इससे सबसे अधिक जीवन प्रभावित होता है।

पहलगाम में आतंकी हमले की जवाबी कारवाई में भारत सरकार ने सबसे पहले सिंधु जलसंधि को ही तोड़ा है जिसे पाकिस्तान को सिंधु नदी का पानी नहीं मिलने से क़रीब 17 करोड़ लोगों को जल संकट का सामना करना पड़ा। चेनाब का पानी रोकने से पाकिस्तान की कई नदियाँ और नाले सूखने की कगार में आने लगे। इसे पाक ने वॉटर अटैक बताया है। उसी तरह अचानक भारत ने झेलम में पानी छोड़ दिया जिसे मुज़फ़्फ़राबाद क्षेत्र में बाढ़ आ गयी। इन सभी करवाइयों से पानी की उपयोगिता के बारे में पता चलता है।

सदियों से चली आ रही यह प्राकृतिक व्यवस्था पिछले कुछ दशकों में बुरी तरह तोड़ी गयी। सत्ता ने भी संसाधनों
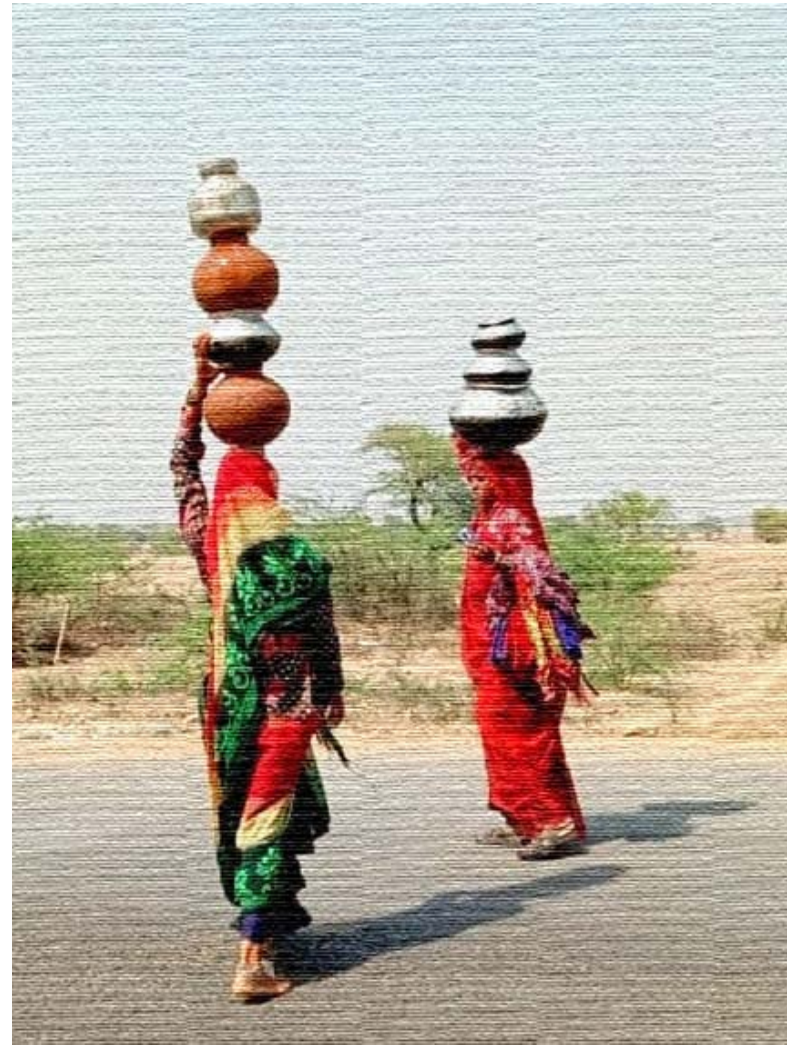
का केंद्रीकरण किया। औद्योगिक क्रांति, तकनीकी विकास, पूँजीवादी सोच और संग्रह की भावना ने इसको नष्ट कर दिया है। सामाजिक क्रांति का सबसे बड़ा दोष यही है। जल के प्रति जब तक श्रद्धा और आस्था बनी रही व्यक्ति इसके सफ़ाई को लेकर भी चिंतित रहा है। प्रकृति के साथ की गयी छेड़छाड़ के कारण कभी बाढ़ की अधिकता आयी तो कभी सुखाड़ की। जल दुनिया में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है लेकिन जीवन के संचालन हेतु प्रयोग में लाने वाले निर्मल जल सीमित मात्रा में मिलते हैं, ऐसे में जल संवर्धन-संरक्षण और सुरक्षा के साथ-साथ जल की व्यापकता, पवित्रता, समझ और महत्त्व को दृष्टि में रखना होगा। अन्य तरल पदार्थों की तुलना में पानी में उच्च विशिष्ट ऊष्मा यानी अत्यधिक ऊर्जा बनाने की क्षमता और ऊष्मीय चालकता होते हैं। यह एक उत्कृष्ट विलायक है और चयापचय के लिए आवश्यक आयनों और अणुओं के परिवहन में मदद करता है। हम जल को जीवन की उपमा देते हैं तो इसलिए कि यह मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों और पेड़ों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यह ठोस रूप में बर्फ़, तरल रूप में समुद्र और नदियाँ और गैसीय रूप में वाष्प के रूप में पृथ्वी में पाया जाता है। विभिन्न रूपों में या अवस्थाओं में भी उसकी रासायनिक संरचना स्थिर रहती है। यह पौधों में प्रकाश संश्लेषण को सक्षम बनाता है और मनुष्यों के लिए खाना पकाने तथा स्नान जैसे विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है। जानवरों को प्यास बुझाने के अलावा, हम देखते है भारी शरीर और मोटी चमड़ी वाले जानवर पानी के पोखर में लेटकर गर्मी से निजात पाते हैं। इसलिए जल संवर्धन प्राकृतिक रूप से हो तो ज़्यादा श्रेयस्कर है।

हम जल को जीवन की उपमा देते हैं तो इसलिए कि यह मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों और पेड़ों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यह ठोस रूप में बर्फ़, तरल रूप में समुद्र और नदियाँ और गैसीय रूप में वाष्प के रूप में पृथ्वी में पाया जाता है।

पानी बचाने की पहल आज विश्व भर की प्राथमिकता है। वर्षा जल संचयन, घरेलू उद्देश्यों में पानी का पुनः उपयोग और पानी बचाने के लिए वित्तीय योजनाएँ बनाने पर महती योजनाओं को लागू किया गया है। भारत में अभी तक पानी व्यावसायिक वस्तु नहीं बना है। कुछ राज्यों में इस पर कर लगाए गए हैं, वरना ज़्यादातर राज्यों में यह मुफ़्त मिलता है, इसलिए लोग इसकी कमी को महसूस नहीं कर पाते हैं।

अधिकांश समस्या दैनिक मानवीय आदतों में निहित है इसलिए रसोई के जल को पौधों में पानी देने के काम में लाया जा रहा है। ब्रश करते समय और नहाने समय भी जब ज़रूरत तभी नल खोलने की सलाह दी जाती है। गाड़ी धोने वाले जल को भी नालियों की सफ़ाई में लगा कर बहुत हद तक हम पानी बचाने की क़वायद को सफल कर सकते हैं। जल संरक्षण योजना के अंतर्गत बरसात के पानी को संग्रहित करना और सूखे का समय इसका इस्तेमाल भी अच्छी पहल है जिसके लिए विद्यालयों में भी जानकारी देनी चाहिए।

हमारे शरीर में औसतन साठ से सत्तर प्रतिशत पानी है। धरती में अठत्तर प्रतिशत पानी है। क्षिति, जल, पावक, अग्नि और अम्बर इन पंचमहाभूतों से पर्यावरण भी बनता है और प्राणियों के भौतिक पिंड की संरचना भी होती है। पानी का सीधा सम्बन्ध हमारे दु:ख-सुख से है इसलिए दोनों अवस्थाओं में आँख से पानी बह जाता है। अति परिश्रम व विपद में ललाट पर पानी की बूंदें छलछला जाती हैं। कहीं यह स्वेद है कहीं आंसू, पर है तो पानी ही।

जब तक पानी में तरंगें रहती हैं, उच्छल प्रवाह रहता है, तब तक यह जीवन का प्रतीक है। इसकी पारदर्शी परतों को सच्चाई से जोड़ कर देखा जाता है। यह मानव-कल्याण के लिए नि:स्वार्थ भाव से बहता रहेगा। जब इसके प्रवाह को बलात रोक दिया जाता है तब यह पंक बन जाता है। गंदा-मटमैला पानी मर्त्यमान होता है। इसलिए पानी को बचा लें। बरसात के पानी में भींग कर पानी-पानी हो जाना रोमांचक है, यह रोमांच बना रहे इसलिए स्वार्थवश पानी को बाँधने का कोई प्रयास न करें, नहीं तो हम आजीवन अपने कुकर्म पर पानी-पानी होते रहेंगे। गलत दिशा से वापस लौटने में कभी देर नहीं होती। सघन वन हो, रंग-बिरंगी तितलियाँ, ढ़ेर सारी चिड़ियाँ, विविध वन्य-प्राणी, चहुँओर हरियाली और आँखों में ज़रा सा पानी। और क्या चाहिए जीने के लिए! ■

kavitavikas28@gmail.com
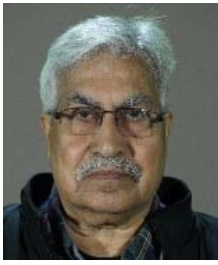
डॉ. हरजीत सिंह
प्रसिद्ध पंजाबी लेखक, फिल्म निर्माता और निर्देशक। जालंधर दूरदर्शन में बहुमूल्य योगदान। अनेक किताबें और फिल्में लिखीं। जिनमें 'बैसाखी', 'हवाएं', 'हीर रांझा' और 'एह जनम तुम्हारे लेखे' प्रमुख हैं। 'पंजाब दी लोक धारा', 'संदली बुहा', 'इबारत' (कहानियां), 'संदल बार' (नाटक), 'सच्ची-मुची ऐवें मुची' (बच्चों के लिए उपन्यास) प्रकाशित। 'भाई मोहन सिंह वैद पुरस्कार' (1981) और 'पीटीसी पंजाबी लाइफटाइम अवार्ड' जैसे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।
सम्पर्क : harjitshiva@gmail.com

शख्सियत

खेल खेल में विज्ञान की दुनिया

अनुवाद : अमनदीप सिंह

पद्मश्री अरविंद गुप्ता साधारण घरेलू टूटी-फूटी बेकार वस्तुओं से ऐसे असाधारण खिलौने बनाते हैं जो विज्ञान की कई परतें खोलते हैं। एक टूटी हुई रबड़ की चप्पल में छेद करके उनमें चुंबक लगाकर वे एक पुरानी सीडी (CD) और पेंसिल से ऐसा खिलौना बनाते हैं, जो चुंबकीय आकर्षण के सिद्धांत को खेल-खेल में समझाता है। वे ऐसे 800 से अधिक खिलौने बना चुके हैं और उन्हें देश-विदेश तक पहुंचा चुके हैं।

उत्तर प्रदेश के बरेली में जन्मे अरविंद गुप्ता का बचपन बेहद गरीबी में बीता। उनके माता-पिता कभी स्कूल नहीं जा सके, लेकिन उनके मन में अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में पढ़ाने की बड़ी इच्छा थी। वे गरीब थे, इसलिए खिलौने नहीं खरीद सकते थे। अरविंद ने बचपन से ही माचिस, अखबार और बोतल के ढक्कन से खिलौने बनाना शुरू कर दिया था। बाद में उन्होंने आईआईटी कानपुर से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की। फिर टेल्को में ट्रक बनाने लगे, लेकिन उनके अंतर्मन में उनके बचपन के वे खिलौने अभी भी बसे हुए थे। दफ्तर आते-जाते समय वे झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों को देखते और उनके मन में ऐसे बच्चों को विज्ञान पढ़ाने का विचार आया। उन्होंने 1978 में टेल्को से एक साल की छुट्टी ली और अपना सारा समय और वैज्ञानिक ज्ञान गरीब आदिवासी बच्चों को देने की जिम्मेदारी ली। बहुत जल्द ही उन्हें एहसास हो गया कि जीवन में वे ट्रक नहीं बल्कि ऐसे खिलौने बनाएंगे जो विज्ञान के द्वार खोलेंगे। इस प्रयास में उनकी पत्नी ने उनका भरपूर साथ दिया। वे कहते हैं, "लोग जीवन बीमा की बात करते हैं। मैं पत्नी बीमा की बात करूंगा। यह मिशन मेरी पत्नी के सहयोग के बिना संभव नहीं हो पाता।"

अरविंद गुप्ता

अरविंद गुप्ता और उनके साथियों ने पिछले तीस सालों में 4200 वीडियो बनाए हैं। ये 18 भाषाओं में उपलब्ध हैं। अब तक वे साधारण बेकार टूटी-फूटी वस्तुओं से 800 से अधिक खिलौने बना चुके हैं जो विज्ञान के सैद्धांतिक पहलुओं को बहुत सरल तरीके से समझाते हैं। ये खिलौने चुंबकीय आकर्षण, टकराव, बिजली, क्रिस्टल संरचना और न्यूटन के नियम के सिद्धांतों को मिनटों और सेकंडों में समझाते हैं। अरविंद गुप्ता अब
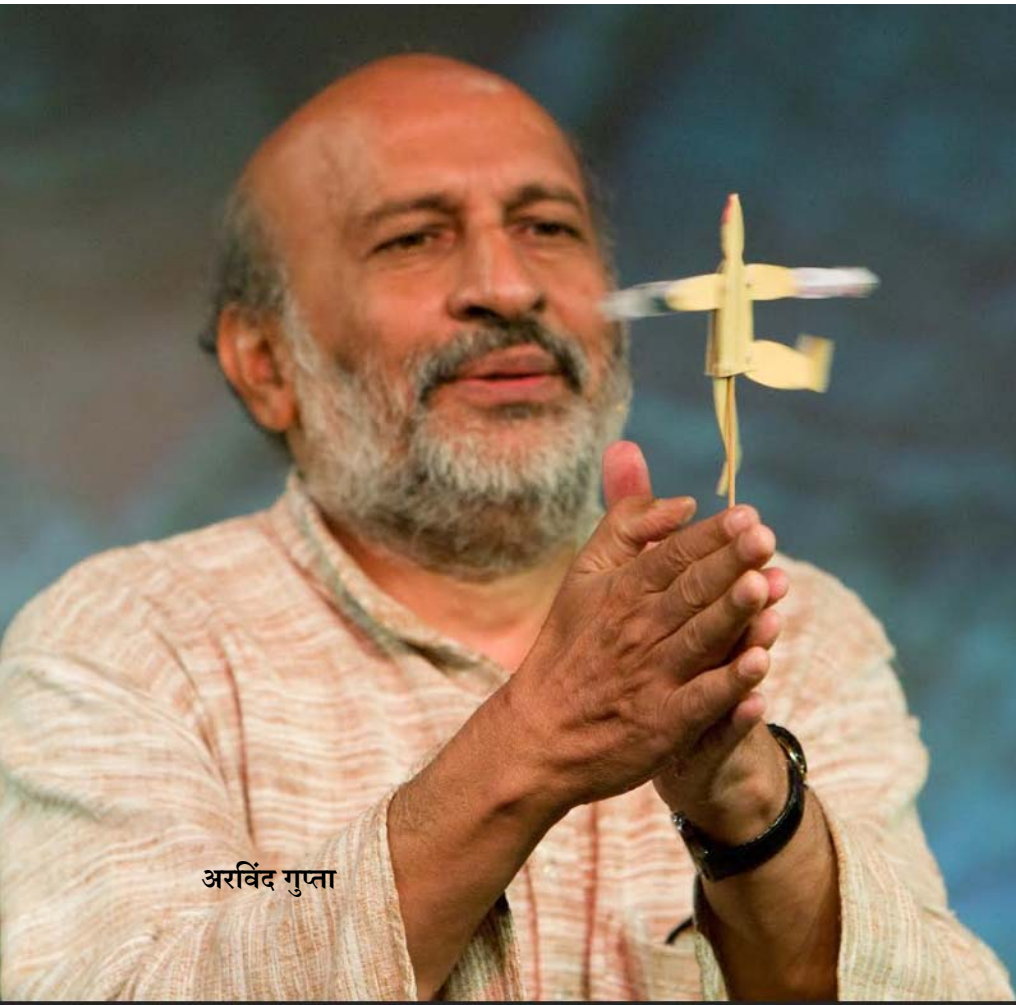
तक भारत और विदेश के 3000 स्कूलों में जाकर इन खिलौनों के माध्यम से बहुत सी जानकारियां दे चुके हैं। उनकी वेबसाइट पर 4000 किताबें उपलब्ध हैं जो विज्ञान, पर्यावरण, विश्व शांति और गणित आदि विषयों से संबंधित हैं। इस साइट से प्रतिदिन लगभग 12000 किताबें नि:शुल्क डाउनलोड की जाती हैं।

स्पेन के डॉ. ब्रिजी ओकाना ने उनके 300 वीडियो स्पेनिश में डब किए हैं। यह सामग्री अब स्पेन के स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल है। और अब लैटिन अमेरिका के लाखों छात्र भी उन वीडियो के माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।

अहमदाबाद के प्रज्ञा और दिलीप भट्ट के घर में एक नेत्रहीन बच्चे का जन्म हुआ। उन्होंने अपने बच्चे के लिए एक स्पर्श-संवेदनशील लेखन स्लेट बनाई, जो बहुत ही साधारण घरेलू वस्तुओं से बनाई गई थी। अरविंद गुप्ता ने अपने भाषणों, अपने लेखों और अपनी वेबसाइट के माध्यम से इस आविष्कार को दुनिया के सामने पेश किया। अब 13 मिलियन नेत्रहीन बच्चे इस स्लेट की मदद से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। जब यह वीडियो बैंकॉक के एक शिक्षक के पास पहुंचा जो नेत्रहीन बच्चों को पढ़ाते थे, तो उन्होंने यह स्लेट बनाकर अपने छात्रों को दी। यह प्रयोग इतना सफल रहा कि अब थाईलैंड में दृष्टिहीनों के सभी स्कूल इस स्लेट का इस्तेमाल कर रहे हैं। इसकी कीमत 100 रुपये से भी कम है।

अरविंद गुप्ता का काम देखने में बहुत सरल है, लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है। यह पीएचडी वालों के लिए नहीं है।

अरविंद गुप्ता का रोज़गार भी अब खिलौने बनाना ही है। वे कहते हैं, "मैं अपनी आजीविका के लिए खिलौने बनाता हूँ। मेरे खिलौने बच्चों को खुशी और उत्साह देते हैं। वे उनके चेहरों पर मुस्कान लाते हैं और उनके दिलों में विज्ञान के प्रति प्रेम जगाते हैं। इससे मुझे बहुत आध्यात्मिक खुशी मिलती है।"

1986 में उन्होंने अपनी पहली किताब 'मैचस्टिक मॉडल्स एंड अदर साइंस एक्सपेरीमेंट्स' लिखी, जिसका 12 भाषाओं में अनुवाद हुआ। इसकी करीब 10 लाख प्रतियां बिक चुकी हैं। उन्हें बच्चों, माता-पिता और शिक्षकों से इतने पत्र मिले कि उन्होंने अपना पूरा जीवन 'खिलौनों के माध्यम से विज्ञान' के मिशन को समर्पित कर दिया।

वे कहते हैं, "विज्ञान पढ़ाने के लिए आपको महंगे उपकरण और प्रयोगशालाओं की जरूरत नहीं होती। आपको जुनून की जरूरत होती है। बच्चों का दिल और दिमाग सबसे बड़ी प्रयोगशाला है।" वे कहते हैं, "बच्चों के लिए अच्छी किताबें बहुत कम हैं। मैंने अब तक 140 किताबों का हिंदी में अनुवाद किया है। लेकिन मुझे अभी भी कोई प्रकाशक नहीं मिल पाया है। लेकिन मैं कभी हार नहीं मानता। मैं बहुत सारी किताबों की पीडीएफ बनाता हूं

विज्ञान पढ़ाने के लिए आपको महंगे उपकरण और प्रयोगशालाओं की जरूरत नहीं होती। आपको जुनून की जरूरत होती है। बच्चों का दिल और दिमाग सबसे बड़ी प्रयोगशाला है।

और उन्हें अपनी वेबसाइट के ज़रिए पाठकों तक पहुंचाता हूं।"

इन सभी किताबों और खिलौनों को बनाने की सारी जानकारी, उनसे जुड़े वैज्ञानिक संदर्भ और विवरण उनकी वेबसाइट 'अरविंद गुप्ता टॉयज डॉट कॉम' (https://arvindguptatoys.com) पर बिल्कुल मुफ्त उपलब्ध हैं। अब उनकी वेबसाइट पर विज्ञान से जुड़े 6300 वीडियो हैं। 42 मिलियन छात्र और शिक्षक इनके जरिए ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और उस ज्ञान को आगे भी बाँट रहे हैं।

अरविंद गुप्ता कहते हैं, "प्राचीन भारत में किसी भी चीज़ को बेकार, घटिया या बेकार नहीं माना जाता था। हर वस्तु में नया जीवन देखा जाता था। लेकिन आज ऐसा नहीं है। चारों ओर कूड़े के ढेर नहीं, बल्कि पहाड़ हैं। इस कूड़े में पड़े रद्दी अख़बार, टूटे हुए पेन, खाली डिब्बे, बोतलें, झाड़ू के हैंडल और रबर के टुकड़े मेरे खिलौनों की सामग्री बन जाते हैं। उनका TED टॉक ('टर्निंग ट्रैश इनटू टॉयज़' - 'Turning Trash Into Toys' Ted Talks) पहले 10 बेहतरीन टॉक में से एक है। अरविंद गुप्ता की छात्रा हंसा पद्मनाभन ने उनके बनाए पेंसिल खिलौने पर एक पेपर लिखा था, जिसके लिए उन्हें 2500 डॉलर का अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। अब एक छोटे से सितारे का नाम भी 'हंसा' रखा गया है।

अरविंद गुप्ता कहते हैं, "हर बच्चे के अंदर एक वैज्ञानिक होता है। लेकिन हम रटने और उबाऊ किताबों के बोझ से बच्चों की विज्ञान के प्रति जिज्ञासा, रुचि और जुनून को खत्म कर देते हैं। विज्ञान को डंडे से नहीं, प्यार से ही सिखाया जा सकता है।" उनकी सलाह है, "हमारे पास एक ही जीवन है, हम इसे किसी के खोखले सपने के लिए क्यों जिएं - खासकर कॉरपोरेट के लिए। अपने सपनों को जिएं, भले ही हार जाएं।"■

प्रो. डॉ. तत्याना ओरान्स्कया

रूस में जन्म। लेनिनग्राद/सैंट पीटर्सबर्ग राष्ट्रीय विश्वविद्यालय से भारत-विद्या में स्नातकोत्तर। भाषा-शास्त्र (गैर-यूरोपीय भाषाएँ) में पीएचडी। केन्द्रीय हिंदी संस्थान से डिप्लोमा। हाम्बुर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी में आधुनिक भारत-विज्ञान की प्रोफ़ेसर के तौर पर कार्य किया। हिंदी व्याकरण और साहित्य, बुन्देली भाषा और साहित्य, भारतीय-आरियाई भाषाओं का ऐतिहासिक तथा टाइपोलोजिकल व्याकरण, ग्राम्य देवता, भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विशेषज्ञ। सौ से अधिक रूसी, हिंदी, अंग्रेज़ी और जर्मन में वैज्ञानिक लेख, अनूदित रचना तथा सन्दर्भ कार्य प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। सम्प्रति : हिंदी-उर्दू अध्यापन तथा मॉस्को में निवास। सम्पर्क : ta.oranskaia@gmail.com

विमर्श

यूरोप में हिंदी की मानक परीक्षा

इस आलेख में हिंदी की मानक परीक्षा प्रस्तावित करने का प्रयास किया जा रहा है। यह प्रयास मेरे पसंदीदा विषयों "विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम में एकरूपता की चुनौतियाँ" से प्रेरित है। इस परीक्षा के मुख्य लक्षित वर्ग में वे लोग आते हैं जो किसी भी यूरोपीय भाषा का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। यहाँ 'यूरोप' शब्द राजनीतिक नहीं, बल्कि भौगोलिक इकाई के रूप में ग्रहण किया गया है जिसमें रूस, यूक्रेन, मोल्दोवा, जार्जिया आदि सभी देश आ जाते हैं। पाठक सहज ही यह अनुमान लगा सकते हैं कि प्रस्तावित प्रायोजना का उद्देश्य अन्ततः ऐसी सामग्री उपलब्ध करवाना है जिसमें विविध प्रकार के जटिल प्रयोग, अभ्यास और प्रश्न तथा अध्यापन/परीक्षा-सामग्री शामिल होगी और इसके लिए सामान्य यूरोपीय भाषा फ्रेमवर्क (The Common European Framework of Reference for Languages (CEFR/सायूभाफ्रे)) को आधार बना कर अनुसरण किया जाएगा।

संयुक्त यूरोप की साधारण शिक्षा-उन्मुख प्रणालियाँ - बोलोग्ना प्रक्रिया और CEFR :

प्रस्तावित मानक परीक्षा मुख्यतः यूरोपीयभाषियों के लिए है, परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि अन्य मातृभाषियों के लिए यह परीक्षा-प्रणाली उपयोगी नहीं हो सकती है। जिन 40 भाषाओं में CEFR अनूदित हो चुका है, उनमें चीनी, अरबी, कोरियाई तथा कुछ और ग़ैर-यूरोपीय भाषाएँ भी हैं। अभी तक किसी भी भारतीय भाषा में इस महत्वपूर्ण अभिलेख का अनुवाद नहीं हुआ है, न ऐसे ही सिद्धांतों पर कोई भारतीय परीक्षा-प्रणाली विकसित की गई है। यह स्वाभाविक है कि जिन भाषाओं में इस अभिलेख का अनुवाद हुआ है ये अधिकतर यूरोप की भाषाएँ हैं क्योंकि यह प्रणाली संयुक्त यूरोप के लिए नियत की गई है। किसी भाषा विशेष से संबद्ध न होकर यह इस प्रकार की विद्यमान प्रणालियों में से (उदाहरणतः अंग्रेज़ी के लिए TOEFL और IELTS, रूसी के लिए TORFL) सबसे

अधिक व्यापक है। CEFR / सायूभाफ्रे में आने वाली भाषाएँ भिन्न-भिन्न भाषा-परिवारों की हैं और उनमें प्ररूपात्मक (टाइपोलॉजिकल) भिन्नता भी है। ऐसा माना जाता है कि यह प्रणाली सभी यूरोपीय भाषाओं के कौशल के मूल्यांकन में काफी उपयोगी है। इस प्रणाली की सफलता के पीछे शैक्षणिक के अलावा शक्तिशाली राजनीतिक तथा आर्थिक आकांक्षाएँ भी हैं।

यहाँ इस व्यापक परीक्षा-प्रणाली के इतिहास और प्रगति का सिंहावलोकन करना उचित होगा ताकि इस प्रणाली को विकसित करने की प्रक्रिया के विविध संदर्भों को उजागर किया जा सके।

भाषा-दक्षता के मूल्यांकन के लिए यूरोपीय परिषद सन् 1971 से ही ऐसे फ्रेमवर्क को तैयार करने के लिए सक्रिय रही है जो मूल्यांकन प्रक्रिया में अपने आप में व्यावहारिक साधन सिद्ध हो सके। बाद के दशकों में भाषा-शिक्षण का काम आगे बढ़ता रहा और CEFR का पहला प्रारूप 1996 में बन कर तैयार हुआ जिसमें यूरोप और यूरोप से बाहर के कई भाषा-अध्यापकों का योगदान रहा है। यह योगदान फ्रेमवर्क की संरचना, उसकी विषयवस्तु के क्रम-निर्धारण तथा उचित पद्धति के विकास को लेकर था।

वर्तमान फ्रेमवर्क का पिछला संशोधन सन् 2018 में किया गया था (CEFR 2018)। इसकी समीक्षा यूरोप और यूरोप से बाहर के कई संस्थानों ने की है जिनमें ELT Consultants (India) भी शामिल है। वस्तुत:, इस फ्रेमवर्क को विशुद्ध यूरोपीय प्रणाली के रूप में विकसित किया गया था। वर्तमान फ्रेमवर्क ने और उसके पूर्ववर्ती फ्रेमवर्कों ने भी बहुत कुछ संप्रेषणात्मक भाषा-शिक्षण तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की धारणाओं से ग्रहण किया था जिनकी जड़ें भाषा-संबंधी आंग्लो-अमेरिकी दृष्टि में विद्यमान थीं (Alderson 2007: 660)। वर्तमान 'क्रियाशीलपरक पद्धति' 1970 के दशक में प्रस्तावित 'संप्रेषण पद्धति' पर आधारित होने के साथ-साथ उससे काफ़ी आगे बढ़ गई है।

संयुक्त यूरोप के निर्माण की जो चुनौतियाँ खड़ी थीं, उनमें इस चर्चा के लिए दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं : एक तो उच्चस्तरीय शिक्षा में योग्यता के मानक तथा गुणवत्ता की तुलनीयता सुनिश्चित करना तथा दूसरे, यूरोपीय संघ की सभी भाषाओं की कुशलता की समान आकांक्षाएँ निर्दिष्ट करना और साथ-साथ परीक्षा-प्रणाली का निर्माण करना। पहली चुनौती से बोलोग्ना प्रक्रिया उत्पन्न हुई, दूसरी चुनौती से - सामान्य यूरोपीय भाषा फ्रेमवर्क। माना जाता है कि इन दो प्रणालियों से उक्त समस्याओं का काफी हद तक समाधान प्राप्त हुआ है। आगे चलकर ये सुधरती जा रही हैं। दोनों प्रणालियाँ रणनीतिक तथा अर्थक्रियात्मक दृष्टि से समान हैं, क्योंकि उनका निर्माण यूरोप के राजनैतिक एकीकरण, आर्थिक तीव्रीकरण तथा नियोक्ताओं के हित को ध्यान में रखकर किया गया है। दोनों तीन उद्देश्य - अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन करना - सामने रखकर विकसित की गई हैं।

यहाँ इन तीन उद्देश्यों को हिंदी के प्रसंग में देखना चाहिए। यूरोपीयभाषियों के लिए मानक हिंदी परीक्षा लाभदायक क्यों हो सकती है? इसकी क्या आवश्यकता है? इस संबंध में सर्वप्रथम विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों का विचार आता है। बोलोग्ना प्रक्रिया का एक उद्देश्य है - शिक्षण को अंतर्राष्ट्रीयता तथा विद्यार्थियों की गतिशीलता को नियमित आधार प्रदान करना, जिससे विद्यार्थी कठिनाइयों के बिना विश्वविद्यालय बदल सकते हैं तथा उनको पढ़ाई के दौरान किसी विदेशी विश्वविद्यालय में एक या दो सत्र पढ़ने का मौक़ा मिल सकता है। इस प्रणाली का औपचारिक और सबसे महत्त्वपूर्ण साधन क्रेडिट प्वाइंट है। शिक्षा कोर्सों में मिली हुई क्रेडिट प्वाइंटों की संख्या के बलबूते विश्वविद्यालय बदला जा सकता है। इन दो विश्वविद्यालयों में एक ही विषय के कोर्सों के तत्त्व और ढाँचे अलग-अलग हों, यह कोई बात नहीं है, निर्णायक है क्रेडिट प्वाइंटों की संख्या। परंतु विदेशी विद्यार्थियों के लिए यह काफी नहीं है,

> इस पद्धति का किसी निश्चित शैक्षिक विधि से संबंध नहीं है। न ही इसमें निश्चित है कि व्याकरण या साहित्य पढ़ाया जाए अथवा नहीं। आधारभूत उद्देश्य यह है कि भाषा अध्यापन के लिए विकसित पाठ्यक्रम किसी भी भाषा-भाषी को पराई भाषा में संप्रेषणीय और संज्ञानात्मक कार्यों के निष्पादन में सक्षम कर सके।

उनको अध्ययन-अध्यापन की भाषा कौशल का प्रमाण-पत्र भी प्रस्तुत करना है। ऐसे ही विश्वविद्यालय बदलने वाले भारत-विद्या (Indology) के विद्यार्थी हिंदी (या किसी दूसरी सीखी जाने वाली भारतीय भाषा) मानक परीक्षा का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करें, तो इससे अध्ययन-अध्यापन के लिए बहुत फायदा होगा। भारत-विद्या के विद्यार्थियों के अलावा कुछ समाज-शास्त्र, राजनीति-विज्ञान तथा धर्म-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए भी ऐसी परीक्षा लाभदायक होगी।

विश्वविद्यालयों और विद्यार्थियों के अतिरिक्त कौन हैं ऐसे नियोक्ता जिनको हिंदी भाषा में कुशल कर्मचारियों की ज़रूरत है और कौन हैं ऐसे कर्मचारी? ये हैं गैर सरकारी संस्थाओं, दूसरे समाज कार्य, हर तरह की शोध-परियोजनाओं में शामिल तथा उद्योग और दूसरे बिजनेसों में लगे लोग, जिनको अपने काम के लिए भारत (विशेषकर उत्तर भारत) में आम आदमी से संप्रेषण करना चाहिए। ये ही ग्रुप हैं जिनके लिए बोलोग्ना प्रणाली के तहत पाठन के तुलनीय परिणाम आवश्यक हैं।

इसके अलावा इस चर्चा की परिधि में यह कल्पना की जा सकती है कि यूरोप जैसे भारत के लिए भी राजभाषाओं की मानक परीक्षा लाभदायक होगी।

CEFR की संक्षिप्त प्रस्तुति :

यूरोपीय भाषाओं के अध्ययन और अध्यापन में CEFR की अवहेलना करना असंभव है। इस प्रणाली का केंद्र बिंदु मानक परीक्षा है जिसका अध्यापन की प्रक्रिया से सुदृढ़ संबंध है। इसका सार 'क्रियाशील पद्धति' है। 'क्रियाशीलपरक पद्धति' (action-oriented approach) से तात्पर्य यह है कि "CEFR में शिक्षार्थियों का मूल्यांकन यह देख कर किया जाता है कि विभिन्न परिस्थितियों तथा परिदृश्यों में सौंपे हुए किसी काम को शिक्षार्थी कर सकते हैं कि नहीं और उसे पूरा करने में वे कितना सक्षम हैं।" (Lingua Core) क्रियाशील पद्धति जीवन यथार्थ की संप्रेषण आवश्यकताओं के विश्लेषण पर आधारित है। इस पद्धति का किसी निश्चित शैक्षिक विधि से संबंध नहीं है। न ही इसमें निश्चित है कि व्याकरण या साहित्य पढाया जाए या नहीं। आधारभूत उद्देश्य यह है कि भाषा अध्यापन के लिए विकसित पाठ्यक्रम किसी भी भाषा-भाषी को पराई भाषा में संप्रेषणीय और संज्ञानात्मक कार्यों के निष्पादन में सक्षम कर सके। 'कर सकना (सकता हूँ/है)' ('can do') विवर्णकों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उनसे शिक्षार्थी के लिए संप्रेषण के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। एक स्तर की सूची में 10 से 20 तक विवर्णकों की संख्या सब से उपयोगी मानी जाती है (CEFR 2018: 43)।

> हिन्दी अनुवाद भवन में हिन्दी के लेखकों और कवियों के साथ-साथ विभिन्न देशों के विद्वान और लेखक आदि एक साथ मिलकर एक-दूसरे के सहयोग से हिन्दी से तथा हिन्दी में अनुवाद का कार्य कर सकें।

क्रियाशील पद्धति जीवन यथार्थ की संप्रेषण आवश्यकताओं के विश्लेषण पर आधारित है। यह 'कर सकना / सकता है / सकता हूँ' ('can do') विवर्णकों (descriptor) का प्रयोग करके भाषा कौशल प्राप्ति पर जोर देती है।

भाषिक योग्यता की जाँच त्रिस्तरीय मैट्रिक्स के आधार पर की जाती है - इनमें से प्रत्येक के अन्तर्गत दो-दो दरजे आते हैं। यह मूलभूत प्रणाली निम्न प्रकार है -

A - आधारभूत प्रयोक्ता (Basic user)

A1 - आरंभिक स्तर (Breakthrough)

A2 - साधारण स्तर (Waystage)

B - स्वतन्त्र प्रयोक्ता (Independent User)

B1- पारगमन (थ्रेसहोल्ड /Threshold)

B2 - सुविधा (Vantage)

C - कुशल प्रयोक्ता (Proficient User)

C1 - समर्थ क्रियाशील कौशल (Effective Operational Proficiency)

C2 - भाषा प्रवीणता (Mastery)

CEFR के इन 6 आधारभूत दरज़ों ने भाषा परीक्षा में ही नहीं बल्कि भाषा शिक्षण, पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों तथा अध्यापकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण कोर्सों में महत्त्वपूर्ण स्थान लिया है। इस से विदित है कि मानक परीक्षा-प्रणाली और भाषा शिक्षा के बीच सुदृढ़ संबंध है।

CEFR के आधुनिकतम संपादन (2018) में इन तीनों

के अलावा मध्यस्थता (mediation) का वर्णन भी किया जाता है, जिस को चौथा पहलू माना जाता है। दूसरे शब्दों में इसका मतलब है - ऐसे व्यक्तियों का संप्रेषण संभव करना जो एक दूसरे की भाषा नहीं जानते हैं।

हर स्तर पर भाषा दक्षता के मुख्यतः तीनों आधारभूत पहलुओं के विकास पर ध्यान दिया जाता है। ये पहलू निम्नलिखित हैं :

भाषा अधिग्रहण (perception) - मौखिक और लिखित

भाषा उत्पादन (production) - मौखिक और लिखित

संप्रेषण (communication), यानि भाषा दक्षता के उपरोक्त दोनों पहलुओं का मेल - मौखिक और लिखित

CEFR के अनुकूल मानक हिंदी परीक्षा प्रणाली विकसित करने का प्रस्ताव :

हिंदी मानक परीक्षा प्रस्ताव भोपाल में 2015 में 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में किया गया था। यूरोप के चार देशों के विश्वविद्यालयों से आए हुए प्रतिनिधि इसके प्रवर्तक थे। उनके नाम हैं : डॉ. दनूता स्ताषिक (वारसा, पोलैण्ड), डॉ. मारिया नेज्यैषी (बुडापेस्ट, हंगेरी), डॉ. हैंत्स वेर्नेर वैस्लैर (उपसाला, स्वीडन) और इस आलेख की रचायिता डॉ. तत्याना ओरांस्कया (हाम्बुर्ग, जर्मनी)।

प्रस्ताव का मूल रूप :

हिन्दी को विश्व भाषा बनाने का उद्देश्य सामने रखकर इसकी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा आयोजित करने की आवश्यकता है। जिस तरह यूरोप एवम् एशिया के विभिन्न देशों की भाषाओं के लिये परीक्षाओं की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की जा चुकी है, उसी तरह हिन्दी भाषा की भी मानक परीक्षा व्यवस्था सुनिश्चित की जाए।

पूरे विश्व में हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए भारत में हिन्दी अनुवाद भवन की स्थापना की जाए। जिसके अंतर्गत हिन्दी साहित्य का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने की सुविधा प्रदान की जाए। इसी तरह दूसरे देशों के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद कराया जाए, जिससे विश्व के साहित्य का अध्ययन हिन्दी भाषियों के लिये भी उपलब्ध हो सके। ऐसे हिन्दी अनुवाद भवन में हिन्दी के लेखकों और कवियों के साथ-साथ विभिन्न देशों के विद्वान और लेखक आदि एक साथ मिलकर एक-दूसरे के सहयोग से हिन्दी से तथा हिन्दी में अनुवाद का कार्य कर सकें। इस प्रकार समृद्ध हिन्दी साहित्य को विभिन्न देशों तथा विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करके उपलब्ध कराया जा सके। जिससे विश्व में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में सुविधा होगी। इस योजना के अंतर्गत पहले प्रोजेक्ट के रूप में विभिन्न देशों के साहित्यों के संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय हरेक देश की साहित्यिक श्रेष्ठ कृतियों के साथ तैयार किये जाएँ।

तीनों सहयोगियों ने मेरे इरादे का समर्थन किया है। बाद में इसे CEFR के सैद्धांतिक संदर्भ में प्रदर्शित किया गया है। लक्ष्य वही है जो पहले निर्धारित किया गया था, यानि मानक हिंदी परीक्षा का ढांचा विकसित करके इसको पहले यूरोप के कुछ विश्वविद्यालयों में प्रयोग के तौर पर लागू करना और क्रमशः इस प्रणाली को विस्तृत करवाने के लिए प्रयास करना।

मूलपत्र में कुछ परिवर्तन किया जाना सही होगा। आधारभूत लक्ष्य को संक्षिप्त और बिल्कुल स्पष्ट रूप से निर्धारित करके इस पर जोर दिया जाए तथा इसकी प्राप्ति के साधनों के प्रयोग का विचार किया जाए। इस चरण पर मूलपत्र का दूसरा (साहित्य का) मुद्दा हटाकर पहले मुद्दे - यानि हिंदी भाषा की मानक परीक्षा को ही सर्वप्राथमिक कार्य समझना चाहिए। जैसे ऊपर कहा जा चुका है, इसका आधार CEFR होना चाहिए। इस परियोजना को कार्यान्वित करने हेतु समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित करना आवश्यक है। यह साधन मूलपत्र के तीसरे मुद्दे में उल्लेखित है। इन सुझावों के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय मानक परीक्षा के विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया जाए। इसके जरिए हिंदी को देश और विदेश में भी अनेक क्षेत्रों में कार्य भाषा बनाने की प्रक्रिया में तीव्रता आएगी तथा इसके साथ-साथ हिंदी की प्रतिष्ठा को नई ऊंचाई पर पहुंचाया जाएगा।■

संदर्भ-ग्रंथ सूची

Alderson, Charles J. 2007. "The CEFR and the Need for More Research". The Modern Language Journal, 91/4, 659-663. ttps://www.jstor.org/stable/pdf/4626093 (accessed 18.09.2019).

Common European Framework of Reference for Languages: Learning, teaching, assessment. Companion Volume with New Descriptors. 2018, February. Council of Europe. https://rm.coe.int/cefr-companion-volume-with-new-descriptors-2018/1680787989 (accessed 05.09.2019)

Common European Framework of Reference for Languages: Learning, teaching, assessment. Structured overview of all CEFR scales. http://ebcl.eu.com/wp-content/uploads/2011/11/CEFR-all-scales-and-all-skills.pdf (accessed 12.09.2019)

Lingua Core. https://www.linguacore.com/blog/prove-language-level-2-cefr/ (accessed 05.09.2019)

राधा जनार्दन
रचनाकार एवं अनुवादक। तमिल और अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद। कविता की दो पुस्तकें व अनुवाद की कई प्रकाशित। कविता, कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। सम्प्रति - सिएटल, अमेरिका में निवास।
सम्पर्क : janardhanradha@yahoo.com

बतकही

चुन्नू से पूछो

आज का हर बच्चा मेरे लिये चुन्नू है और पाँच-छह साल का चुन्नू उन सारे मसलों का शिकार है जिसके शिकार आधुनिक युग के कई बच्चे हैं। चुन्नू स्कूल जाता है, लौटता है तो घर में नौकरानी या सेविका उसकी प्रतीक्षा कर रही है। माता-पिता दोनों ही इस अच्छे स्कूल में उसे डालने के लिये और अन्य सुविधाओं के लिये नौकरीपेशा हैं।

दो बजे लौटा चुन्नू खाने के लिये हुज्जत करता है, उसे चाहिए चिप्स, दाल-चावल, सब्ज़ी नहीं। सेविका घी-दाल और चावल के मिश्रण के अधिकांश कौर अपने गले उतारकर उसे चिप्स की पैकेट थमा देती है। इसके बाद आराम का समय है पर चुन्नू को खेलना है। सेविका वीडियो गेम थमाकर ख़ुद टीवी में मशगूल हो जाती है। माँ-बाप घर थक कर लौटते हैं, आश्वस्त हो जाते हैं कि बच्चा सही सलामत है। सेविका चाभी थमाकर अपने काम का उत्तम ब्योरा देकर चली जाती है और माँ-बाप कृतज्ञ भाव से स्वयं भी टीवी देखने बैठ जाते हैं। चुन्नू की होमवर्क हुई कि नहीं? वह ठीक से जवाब नहीं दे पाता और पति-पत्नी में झड़प होने लगती है कि कौन बैठेगा उसके साथ।

इस तरह की दिनचर्या में चुन्नू अगर ख़ुद को एक बोझ और अकेला महसूस करने लगे तो कोई आश्चर्य? घर का हर शख़्स उसे एक बोझ समझ रहा है। वह इस संसार में आया ही है और आशा की जा रही है कि बिना किसी के बताये वह तैरना सीख ले। पति- पत्नी एक आरामदेह घर, अच्छे स्कूल और समाज में बराबरी आदि के चक्कर में भूल जाते हैं कि बच्चे को किस बात की ज़रूरत है, वह क्या सीख रहा है या किसमें उसकी ख़ुशी है। उसका कोमल हृदय वह कोरा पट है जिस पर माता-पिता ने उसके साथ जो बर्ताव किया, जो होने दिया, जो जीवन संबंधी चुनाव किए आदि का पुरज़ोर अंकन होता है और इन्हीं सबको वह अपना वेद मान लेगा। इन्हीं प्रभावों से उसके विचार बनेंगे, व्यक्तित्व बनेगा।

चुन्नू अब सात-आठ साल का है। दोस्त बन गये हैं कुछ स्कूल के कुछ रिश्ते के तो कुछ आस-पड़ोस के। कैसे दोस्त हैं इस पर तो बहुत ध्यान नहीं दिया गया पर हाँ इस पर ज़रूर खोज की गई कि चुन्नू को सिनेमा-ड्रामा-पब-क्लब जाते वक्त कुछ घंटों के लिये किसके घर छोड़ा जा सकता है। वह एक गठरी था जिसे पैदा तो कर दिया गया पर उठाकर चलने में, यानी एक नन्हें मानव के साथ जो

ज़िम्मेदारी निभानी चाहिये उसमें अभिभावकों को दिक़्क़ते हो रहीं हैं क्योंकि अपना निजी सुख और स्वार्थ उनसे त्यागा नहीं जा रहा है। चुन्नू के कोई ऐसा नहीं जिससे वह अपनी ज़िंदगी की छोटी-छोटी कठिनाई ज़ाहिर कर सके। इतना पता था कि गलती कोई हुई तो डाँट और गलती उसकी। कोई निदान नहीं। खाने की बात करें तो तरह-तरह के फ़ास्ट फ़ूड हाज़िर किये जाते न कि घरेलू पौष्टिक पकवान जो पारंपरिक तौर पर या सोच-समझकर बनाये जा सकते हैं। चुन्नू तो रेस्टोरेंट के खाने को ही अच्छा ख़ाना मानने लगा है। इसका असर आप समझ सकते हैं। मेरा एक ही सवाल है क्या चुन्नू के परवरिश में दादा-दादी या नाना-नानी की मदद नहीं ली जा सकती थी? उनको बारी-बारी से उसकी देख-भाल के लिए अपने पास नहीं बुलाया जा सकता था? एक बच्चे को पालने का महत्व बहुत है क्योंकि उसे आगे एक अच्छा और ज़िम्मेदार इंसान बनाना हम बड़ों का मुख्यतः माँ-बाप का काम है। न किया तो बाद में उसको बिगड़ते देख हायतौबा मचाने का कोई मतलब नहीं! बड़े यह ज़िम्मेदारी संपर्क में आये सब बच्चों के लिये महसूस करें। हर बच्चा संसार का उतना ही मासूम और निर्मल है जितना हमारा अपना।

ख़ैर, अब चुन्नू बारह का हो गया है और कम अकेला है क्योंकि हाथ में मोबाइल आ गया है। मोबाइल के सदुपयोग की तो कोई कक्षा नहीं होती अतः उससे आने वाली सर्द हवायें उसे और अन्य बच्चों को भी लपेट रहीं हैं। उसे मर्द-औरत के लिंग भेद की बातें थोड़ी समझ आने लगीं हैं और दुखद बात ये कि स्कूल के घंटों के बाद जब मोबाइल के प्रयोग की अनुमति है तब फूहड़, अश्लील दृश्य देखकर दोस्तों के साथ खीं-खीं करना भी शुरू हो गया है। ग्यारह-बारह वर्ष की उम्र में? जी हाँ, युवावस्था की दहलीज़ बहुत पास आ गई है आजकल! उसकी कच्ची अर्द्ध विकसित मानसिकता में लड़कियों को लेकर कैसे बीज पड़ रहे हैं यह सोचना भी अत्यंत कष्टदायक है। क्या कोई काउन्सेलरया बच्चों का सलाहकार पहले से इन मामलों में स्कूल की ओर से नियुक्त नहीं किया जा सकता? क्या ऐसा मोबाइल नहीं बन सकता जिसमें सिर्फ़ कुछ विश्वासी बुजुर्गों के नंबर हों, नेट नहीं। संपर्क तो किया जा सके किंतु खोज नहीं। वय की इस अवस्था को हमारे पहले की पीढ़ी कैसे सम्भालती थी? बच्चे तो तब भी पलते थे! कोई होनहार निकला, सदाचारी निकला, कोई नहीं। उस पीढ़ी से बेहतर उपकरण हमारे पास मौजूद हैं, उनसे मशविरा कर, काउन्सेलर से सलाह लेकर क्या चुन्नू के माता-पिता कुछ बेहतरीन तरीक़ा नहीं अपना सकते ताकि बच्चे हार्मोन के प्रभाव को समझ सके और अपने सामने संयमित आचरण का एक आदर्श रख सके।

चुन्नू के माता-पिता आधुनिक हैं, संस्कृति और धर्म के अच्छे प्रभाव को समझना या आचरण में उतारना

> अब चुन्नू बारह का हो गया है और कम अकेला है क्योंकि हाथ में मोबाइल आ गया है। मोबाइल के सदुपयोग की तो कोई कक्षा नहीं होती अतः उससे आने वाली सर्द हवायें उसे और अन्य बच्चों को भी लपेट रहीं हैं।

आधुनिकता के विरुद्ध मानते हैं। जब तक स्वयं उनके सामने आचरण के आदर्श नहीं होंगे चुन्नू के सामने क्योंकर होगा? धर्म और संस्कृति, सामाजिक व्यक्तित्व और निज आचरण कैसा हो यह सिखाने में माहिर हैं। सभ्य समाज के निर्माण में ये बड़ी मदद करते हैं। रूढ़िवादिता को निस्संदेह ताक पर रखें बाक़ी अपनी विरासत में कई निदान मौजूद हैं। कोशिश की ज़रूरत है। विभिन्न कलाओं के माध्यम, खेल-कूद आदि उनमें प्रवाहित हार्मोन की इस ऊर्जा को व्यवस्थित करके सभ्य अभिव्यक्ति देने में बड़ी मदद करते हैं। जो बच्चा शारीरिक खेल खूब खेलेगा, संगीत, तबला, नृत्य, चित्रकारी, अभिनय आदि आदि सीखेगा रचनात्मक होगा, शांत चित्त होगा, एडीएचडी* जैसी समस्याओं का कम शिकार होगा। पूरा परिवार ख़ाली समय सुविधानुसार कोई खेल खेले, चाहे वह साँप-सीढ़ी ही क्यों न हो। दोस्ताना माहौल बनेगा, हंसी-मज़ाक़, छेड़छाड़ आदि के साथ तनाव कम होगा, हार को हल्का लेने की सोच पैदा होगी, पिता का हौवा होना कम होगा। इससे बच्चे का अकेलापन निश्चित रूप से कम होगा अन्यथा याद रहे कि अवसाद या डिप्रेशन बच्चों को भी हो सकता है।

माँ-बाप होने की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ आर्थिक नहीं होती। बच्चे स्नेहपूर्ण, ज़िम्मेदार वातावरण में पैसों की कमी से अकेलापन नहीं महसूस करते और ना ही अन्य मानसिक या शारीरिक विकृतियों का शिकार होते हैं, वे यह अकेलापन स्नेह हीनता, बुजुर्गों की अनुशासनहीनता, वार्तालाप का अभाव आदि के कारण महसूस करते हैं। अतः पैसों की कमी को ही सभी समस्याओं की जड़ न माना जाये।

मैं सदा चुन्नू को लेकर चिंतित ही रहूँगी और आगे भी इस बारे लिखती रहूँगी।■

दीपा 'दिनेशनील'

मीडियाकर्मी, शिक्षाविद, रचनाकार। आजतक, हिन्दुस्तान व हिन्दुस्तान टाइम्स से पत्रकारिता की शुरुआत। फिल्मों व दूरदर्शन के लिए स्वतंत्र लेखन के बाद नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ फैशन टेक्नॉलोजी, (वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार) के मुम्बई, बैंगलोर, पटना और भुवनेशवर केन्द्रों में 10+ वर्षों का शैक्षणिक अनुभव। हिन्दी के विभिन्न स्थानीय व् अन्तर्राष्ट्रीय समूहों में सक्रिय भागीदारी। समसामयिक विषयों पर लेख व फिल्म समीक्षा का नियमित प्रकाशन। यू-ट्यूब चैनलों के लिए कहानी-लेखन। सम्प्रति बर्लिन में एक थिएटर समूह की स्थापना एवं ऑडियो प्ले के संचालन में व्यस्त। सम्पर्क : journalistdeepa@gmail.com

बतकही

भाषा-भेद से परे सिनेमा

सपनीली दुनिया छोड़ कर अब फ़िल्में सत्य और तथ्य बयाँ करती नज़र आती हैं। यह नया प्रयोग दर्शकों को खासा पसंद आ रहा है जिससे मेकर्स को हर बार कुछ नया परोसने की प्रेरणा मिल रही है।

हम हैं राही प्यार के, फिर मिलेंगे चलते-चलते - फ़िल्म गीत के ये बोल भारतीय सिनेमा का सत्य उजागर करते हैं। समय, काल, परिस्थितियाँ भले बदलती रहें, सिनेमा नित नए अंदाज़ में लगातार हमारा मनोरंजन, मार्गदर्शन और ज्ञानवर्धन करने हाज़िर हो ही जाती है। कभी मात्र मनोरंजन का माध्यम समझा जाने वाला सिनेमा आज सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का परिष्कार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह समय के साथ स्वयं को नए आयामों में ढ़ाल रहा है। एक समय था जब गीत-संगीत और मेलोड्रामा के बिना सिनेमा की कल्पना नहीं होती थी, किन्तु आज की फ़िल्में भावनाओं, यथार्थ और विविध विषयों की एक समृद्ध झाँकी प्रस्तुत करती हैं। आज का सिनेमा तकनीकी परिष्कार, वैश्विक पहुँच और वैचारिक विविधता का संगम है, जहाँ न केवल परंपराएँ जीवित हैं, बल्कि नवाचार भी हिलोरें मार रहा है। यह आलेख भारतीय सिनेमा के समकालीन परिदृश्य की पड़ताल करता है।

आज का भारतीय सिनेमा अपने शिल्प, विषय और प्रस्तुति में पहले से कहीं अधिक परिपक्व, वैश्विक और प्रासंगिक हो चुका है। पहले सिनेमा मुख्यत: मनोरंजन और नायकीय कल्पनाओं तक सीमित था, पर अब इनमें सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक संदर्भों को

गहराई से दिखाया जाने लगा है। 'आर्टिकल 15', 'पिंक', 'द कश्मीर फाइल्स', 'शेरशाह', 'डिप्लोमैट', 'केसरी-2', 'वीर सावरकर', 'छावा', 'फुले' सरीखी फिल्में न केवल सशक्त कथानक प्रस्तुत करती हैं, बल्कि दर्शकों को सोचने पर भी विवश करती हैं।

कई वर्षों तक भारतीय सिनेमा की पहचान बॉलीवुड तक सिमटी रही। विभिन्न दक्षिण भारतीय फ़िल्में, बांग्ला, उड़िया या अन्य प्रांतीय भाषायी फ़िल्में अपने-अपने प्रान्तों तक ही सिमट कर रह जाती थीं। लेकिन अब स्थिति बदल चुकी है। 'बाहुबली', 'केजीएफ़', 'पुष्पा', 'RRR', 'कान्तारा' जैसी फिल्मों ने भारतीय सिनेमा को भाषा की सीमाओं से मुक्त कर एक अखिल भारतीय पहचान दी है। दर्शक अब भाषा नहीं, कहानी और प्रस्तुति को प्राथमिकता देते हैं। यह बदलाव उद्योग में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा, सहयोग और कॉन्टेंट सशक्तिकरण की ओर संकेत करता है। फॉर्मूला फिल्मों का भी कमोबेश यही हाल है। अब विषयों की विविधता फिल्मों को एक नई पहचान की ओर ले जा रही है। पारंपरिक 'मसाला फिल्मों' से इतर आज फिल्मकार गंभीर, संवेदनशील और प्रयोगधर्मी विषयों पर ध्यान दे रहे हैं। 'मसान', 'कोर्ट', 'सर', 'लंचबॉक्स', 'न्यूटन', 'थ्री ऑफ़ अस', 'वध', 'लापता लेडीज़', 'स्त्री', 'छोरी', 'ओ माय गॉड 2' और 'सुपर बॉयज ऑफ़ मालेगाँव' जैसी फिल्में इसका सजीव मिसाल हैं। अब नायक हर बार नायक नहीं होता, और कहानी अंत में हर बार सुखांत नहीं होती - कभी यथार्थ चित्रित करती है तो कभी खुली रहकर परिणाम दर्शकों के विवेक पर छोड़ दिया जाता है। सपनीली दुनिया छोड़ कर अब फ़िल्में सत्य और तथ्य बयाँ करती नज़र आती हैं। यह नया प्रयोग दर्शकों को खासा पसंद आ रहा है जिससे मेकर्स को हर बार कुछ नया परोसने की प्रेरणा मिल रही है।

एक समय था जब फिल्म की सफलता सितारों की उपस्थिति पर निर्भर थी। परंतु आज दर्शक 'अभिनेता' को महत्व देते हैं न कि 'स्टार' को। पंकज त्रिपाठी, शेफाली शाह, मनोज बाजपेयी, कोंकना सेन शर्मा, राजकुमार राव, जयदीप अहलावत, विजय वर्मा, नवाजुद्दीन सिद्दीकी, तिलोत्मा शोम, अमृता सुभाष, संजय मिश्रा, के के मेनन जैसे कलाकारों ने अभिनय की बारीकियों से दर्शकों के मन में अपनी जगह बनाई है। इनके अतिरिक्त सहयोगी कलाकारों की अहमियत भी अब पहले से कहीं अधिक बढ़ी है। यह बदलाव सिनेमा को ज्यादा लोकतांत्रिक और गुणात्मक बनाता है। फिल्मों की सफलता अब बड़े स्टारकास्ट पर निर्भर न रहकर निर्देशक की दूरदर्शिता, कहानी के अनूठेपन और कलाकारों के अविस्मरणीय अभिनय पर केन्द्रित हो गई है।

तकनीक, स्टोरीटेलिंग और सिनेमेटोग्राफी में भी अविश्वसनीय उत्कर्ष देखने को मिलता है। भारतीय सिनेमा अब तकनीकी दृष्टि से भी विश्वस्तरीय बन चुका है। वीएफ़एक्स, साउंड डिजाइन, प्रोडक्शन वैल्यू और सिनेमेटोग्राफी में उल्लेखनीय बदलाव आए हैं। 'तुम्बड', 'ब्रह्मास्त्र', 'कल्कि 2098 एडी', 'रा.वन', 'बाहुबली', और 'रोबोट' जैसी फिल्में दर्शकों को एक अलग अनुभव प्रदान करते हैं।

स्टोरी टेलिंग के शिल्प में भी सराहनीय बदलाव आया है। नॉनलीनियर नैरेटिव, रियलिस्टिक डायलॉग्स और लेयर्ड करैक्टर्स - जो सही-ग़लत के पैमाने से इतर हमारे-आपके बीच के पात्र लगते हैं, अब फिल्मों का हिस्सा बन चुके हैं। इम्तियाज़ अली की 'अमर सिंह चमिकला', सतीश कौशिक की 'काग़ज़ 2', संध्या सूरी की 'संतोष', अविनाश अरुण की 'थ्री ऑफ़ अस', जसपाल सिंह संधु व राजीव बर्नवाल की 'वध' और अनिल शर्मा की 'वनवास' और हाल ही में रिलीज़ 'टूरिस्ट फैमिली' इसके कुछ सटीक उदाहरण कहे जा सकते हैं।

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स भारतीय सिनेमा के लिए अवसरों की नई दुनिया लेकर आया है। नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम, हॉटस्टार, सोनी लिव और ज़ी5 जैसे प्लेटफॉर्म्स ने नए लेखकों, निर्देशकों और अभिनेताओं को वह मंच दिया है जो पहले केवल बड़े बैनर और सिनेमाघरों तक सीमित था। 'दिल्ली क्राइम', 'पाताल लोक', 'द फॅमिली मैन', 'स्कैम 1992', 'पंचायत', 'गुल्लक', 'ग्राम चिकित्सालय' 'असुर' जैसे वेब सीरीज़ ने सिनेमा के दायरे को व्यापक कर दिया है। फिल्मों के ओटीटी रिलीज़ से क्रिएटिविटी का विस्तार हुआ है और कम बजट में बेहतरीन फ़िल्मों का निर्माण संभव हो सका है। इससे न केवल कलाकारों को लाभ मिला है, बल्कि दर्शकों के पास भी अपनी रूचि के अनुसार कॉन्टेंट देखने की सहूलियत हो गयी है।

ओटीटी प्लेटफॉर्म्स भारतीय सिनेमा के लिए अवसरों की नई दुनिया लेकर आया है। नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम, हॉटस्टार, सोनी लिव और ज़ी5 जैसे प्लेटफॉर्म्स ने नए लेखकों, निर्देशकों और अभिनेताओं को वह मंच दिया है जो पहले केवल बड़े बैनर और सिनेमाघरों तक सीमित था।

अंतरराष्ट्रीय पटल पर भारतीय सिनेमाः 'RRR' का ऑस्कर जीतना, 'The Elephant Whisperers' का वैश्विक सम्मान, 'लगान', 'स्लमडॉग मिलियनेयर', 'लंचबॉक्स' और 'गली बॉय' जैसी फिल्मों की अंतरराष्ट्रीय मान्यता यह दर्शाती है कि भारतीय सिनेमा अब विश्व मंच पर सम्मानित स्थान बना चुका है। इन उपलब्धियों से प्रेरणा लेकर भारतीय फिल्मकार वैश्विक संवेदनाओं के साथ स्थानीय कहानियों का प्रभावशाली समन्वय कर रहे हैं।

कांस फिल्म फेस्टिवल एवं अन्य फिल्म महोत्सवों में भागीदारी से भारतीय सिनेमा की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिनोंदिन सुदृढ़ हो रही है। हाल ही में सम्पन्न 2025 का कांस फिल्म फेस्टिवल इसका साक्षात प्रमाण रहा। निर्देशक नीरज घायवान की फिल्म होमबाउंड, जिसमें जान्हवी कपूर, ईशान खट्टर और विशाल जेठवा प्रमुख भूमिकाओं में हैं, को 'अनसर्टेन रिगार्ड' खंड में प्रदर्शित किया गया। विशेष बात यह रही कि इस फिल्म के कार्यकारी निर्माता के रूप में मार्टिन स्कॉर्सेसी जैसे विश्वप्रसिद्ध निर्देशक भी जुड़े। यह न केवल भारतीय सिनेमा की विषयगत परिपक्वता को दर्शाता है, बल्कि इसकी वैश्विक स्वीकार्यता को भी रेखांकित करता है।

राजस्थानी फिल्म ओम्लो, जो एक 7 वर्षीय बालक और एक ऊँट के माध्यम से घरेलू हिंसा, बाल श्रम और ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं को उजागर करती है, ने भी कांस फिल्म मार्केट में सराहना पाई। फिल्म की सादगी, प्रतीकात्मकता और दृष्टिकोण को विशेष रूप से सराहा गया। इसके अतिरिक्त, राधिका आप्टे की सिस्टर मिडनाइट, जो एक महिला के मानसिक स्वास्थ्य और आत्मखोज की कहानी है, ने टोरंटो अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव (TIFF) सहित कई मंचों पर आलोचकों की प्रशंसा बटोरी। इन आयोजनों में भारतीय सिनेमा की बढ़ती उपस्थिति यह बताती है कि अब हम न केवल मनोरंजन में बल्कि 'आर्ट सिनेमा' और सामाजिक विमर्श के क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ने लगे हैं।

जहाँ सिनेमा लगातार विकसित हो रहा है, वहीं कई समस्याएँ भी सामने हैं - जैसे सेंसरशिप की असंगतता, ट्रोल संस्कृति, राजनीतिक हस्तक्षेप, धार्मिक असहिष्णुता और विचारों की संकीर्णता। कई बार गंभीर विषयों पर फिल्में विवादों में घिर जाती हैं, जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगता है। कभी बेहतरीन फिल्मों को प्रोपागेंडा बताकर उसके सन्देश को खारिज़ करने के प्रयास होते हैं तो कभी दर्शकों की रूचि के नाम पर उन्हें ऐसे कॉन्टेंट परोसे जाते हैं जिनका दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ता है। क्रमशः 'वीर सावरकर' और 'एनिमल' इसके सटीक उदाहरण कहे जा सकते हैं। दूसरी समस्या है, बॉक्स ऑफिस का दबाव। ओटीटी के विस्तार ने भले ही फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों के लिए एक नया आकाश खोला हो, लेकिन बॉक्स ऑफिस आज भी फिल्मों के आर्थिक भाग्य का निर्धारक बना हुआ है। कई बार अच्छे कॉन्टेंट वाली फिल्में प्रचार की कमी या सीमित वितरण के कारण असफल हो जाती हैं। वहीं, स्टार-निर्भर, उच्च बजट वाली फिल्मों को भारी प्रचार मिल जाता है, चाहे उनमें कॉन्टेंट की गुणवत्ता हो या नहीं। बॉक्स ऑफिस का मसला शायद जल्द न भी हल हो, मगर कॉन्टेंट की गुणवत्ता आनेवाले दिनों में निर्णायक साबित होंगे। अब दर्शकों ने बड़े बजट और बड़ी स्टारकास्ट को ख़ारिज करना शुरू कर दिया है। वे पहले से अधिक प्रबुद्ध और जागरूक हुए हैं।

भविष्य की संभावनाएँ: भविष्य का भारतीय सिनेमा अधिक समावेशी, बहुभाषी और तकनीकी रूप से दक्ष होगा। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), वर्चुअल रियलिटी (VR) और इंटरैक्टिव स्टोरीटेलिंग जैसी तकनीकें दर्शकों को नये अनुभव देंगी। अधिक से अधिक महिला निर्देशक, ट्रांसजेंडर किरदार, ग्रामीण पृष्ठभूमि की कहानियाँ, और अंतरराष्ट्रीय सह-निर्माण अब आम होंगे। भारतीय सिनेमा का वर्तमान परिदृश्य उत्कर्ष की यात्रा है। विषयों की विविधता, भाषाओं की समरसता, तकनीकी दक्षता, वैश्विक सरोकार और स्थानीय आत्मा का सम्मिलन इसे विश्व सिनेमा में विशिष्ट बनाता है। अब आवश्यकता इस संतुलन को बनाए रखने की है, जहाँ बाज़ार और कला, परंपरा और प्रयोग, मनोरंजन और विचार, सभी मिलकर सिनेमा को जनसंवाद और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का माध्यम बनाते रहें। भारतीय सिनेमा इस समय परिवर्तनशील और संभावनाओं से भरपूर है। जहाँ पहले सिनेमा एक सीमित ढाँचे में बँधा था, वहीं आज वह कल्पनाओं, यथार्थ, विविधताओं और तकनीकी प्रगति का समागम बन चुका है। आवश्यकता है कि इस बदलाव को मात्र प्रवृत्ति के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनराविष्कार के रूप में देखा जाए। भारतीय सिनेमा अब न केवल भारत की कहानी कह रहा है, बल्कि वह विश्व को भारतीय दृष्टिकोण से देखना सिखा रहा है। भारतीय सिनेमा का भविष्य तब और सशक्त होगा जब हम अपने समाज की जटिलताओं, सौंदर्य और संघर्षों को ईमानदारी से चित्रित करते हुए वैश्विक मंचों पर 'भारतीयता' की सार्थक प्रस्तुति देंगे।■

अमृता खंडेराव

यवतमाल में जन्म। मराठी की प्रसिद्ध लेखिका। प्रकाशित पुस्तकें : सलोख्याच्या गोष्टी (ललित), सकाळ प्रकाशन, पुणे, #कसं_हुईन_तं_हू_माय... (कथा-संग्रह) सकाळ प्रकाशन, पुणे, उलटं टांगलेलं भूत आणि म्हातारी (बालकथा संग्रह) विवेक प्रकाशन, मुंबई। अनेक समाचार पत्रों में नियमित स्तम्भ लेखन। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से संलग्न। 500 से अधिक पर्यावरण विषयक कार्यशालाएं और सामाजिक वनीकरण कार्यक्रमों का आयोजन। 200 से अधिक वीडियो उनके Amruta Khanderao YouTube चैनल पर उपलब्ध हैं। सम्प्रति - साहित्य सृजन एवं यवतमाल, महाराष्ट्र में निवास। सम्पर्क : amrutagkhanderao@gmail.com

मराठी स्कूल क्यों बंद हो रहे हैं?

मराठी से हिन्दी अनुवाद : विजय प्रभाकर नगरकर

समाज में अंग्रेजी के प्रति आकर्षण देख बड़े उद्योगपति, नेता और शिक्षाविदों ने अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोले। आवासीय विद्यालय शुरु किए। थ्री-स्टार और फाइव-स्टार सुविधाएं देना शुरु किया और अंग्रेजी माध्यम के स्कूल पैसे कमाने का साधन बन गए।

अगर हम अलग-अलग भाषाएं बोल, लिख और पढ़ सकते हैं, तो हम अलग-अलग संस्कृतियों से परिचित होते हैं और विभिन्न प्रकार के साहित्य का आनंद ले पाते हैं। मैंने विगत दिनों इसी बारे में एक पोस्ट सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म पर लिखी थी। कई लोगों ने मेरी पोस्ट का मूल अर्थ समझे बिना ही मान लिया कि मैंने वह पोस्ट किसी सरकारी योजना का समर्थन करने के लिए लिखी है। लेकिन भाषा का मुद्दा एकतरफा नहीं है, उसके अनेक आयाम हैं। उदाहरण के लिये महाराष्ट्र में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल शुरू होने के बाद धीरे-धीरे लोग उनकी ओर आकर्षित होने लगे। दुनिया के बाजार में अपने बच्चों को पीछे न छूटने देने के लिए लोगों ने अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में डालना शुरू कर दिया।

इस होड़ में बेहतरीन गुणवत्ता वाले मराठी माध्यम के स्कूल धीरे-धीरे बंद हो गए। सरकारी स्कूल खस्ताहाल हो गए। लोगों का अंग्रेजी के प्रति आकर्षण देखकर बड़े-बड़े उद्योगपति, राजनेताओं और शिक्षाविदों ने अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोले। आवासीय विद्यालय शुरू किए। थ्री-स्टार और फाइव-स्टार सुविधाएं देना शुरू किया।

इस चकाचौंध को देखकर लोग पागलपन की तरह उधर दौड़ने लगे। अंग्रेजी माध्यम के स्कूल पैसे कमाने का साधन बन गए। स्टेट बोर्ड पैटर्न में, महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक महामंडल द्वारा निर्धारित पुस्तकें मराठी भाषा में मराठी माध्यम के स्कूलों के लिए और वही पुस्तकें अनूदित करके अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के लिए उपयोग की जाती हैं।

पाठ्यपुस्तक महामंडल द्वारा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के लिए मराठी तृतीय भाषा की पुस्तक तैयार की जाती है। अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के लिए अंग्रेजी प्रथम भाषा की पुस्तक तैयार करके दी जाती है। मराठी, हिंदी और अंग्रेजी इन तीन भाषाओं के साथ-साथ बाकी विषय और उनमें दिया गया कंटेंट दोनों जगह समान हैं। प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण अध्ययन और हाई स्कूल स्तर पर इतिहास-भूगोल, नागरिक शास्त्र, विज्ञान ये बुनियादी पुस्तकें बोर्ड

द्वारा निर्धारित की गई हैं। ये सभी विषय और उन विषयों की पाठ्यपुस्तकें सरकार के नियमों के अनुसार निर्धारित होने के बावजूद, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों ने वैल्यू एजुकेशन, जनरल नॉलेज, आर्ट एंड क्राफ्ट, ड्रॉइंग, वर्क एक्सपेरिमेंट, प्रोजेक्ट वर्कबुक जैसे कई विषय अपनी मर्जी से थोपने शुरू कर दिए। विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं की महंगी किताबें पाठ्यक्रम में शामिल करना शुरू कर दिया।

मूल रूप से छह से सात बुनियादी विषय होने के बावजूद, पैसे कमाने और अभिभावकों को लूटने के लिए अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों ने अपनी मर्जी से कई विषयों की किताबें अभिभावकों पर थोपीं। विभिन्न कंपनियों के साथ टाई-अप करके खूब कमीशन खाना शुरू कर दिया। कई क्रिश्चियन कम्युनिटी के इंग्लिश मीडियम स्कूलों में होली फेथ की किताबें छात्रों पर थोपी गईं।

साल की शुरुआत में नियमित पाठ्यपुस्तकें सिर्फ 400 से 500 रुपये की होती थीं, जबकि संस्थाओं और स्कूलों ने दस से बारह हजार रुपये की बेकार किताबें अभिभावकों के गले मढ़ना शुरू कर दिया। नर्सरी के छात्रों के हाथों में पांच से सात हजार रुपये की किताबों का गट्ठर दिया जाने लगा। आगे साल भर वे विषय कभी नहीं पढ़ाए जाते थे, लेकिन आपातकाल के रूप में परीक्षा के दौरान उन पर दस-बीस प्रश्न लिखवाते थे और उन विषयों के पेपर लेते थे, ऐसे धंधे शुरू किए।

प्री-प्राइमरी सेक्शन में क्या पढ़ाना है और कौन सी किताबें इस्तेमाल करनी हैं, इस पर सरकार का कोई बंधन न होने के कारण, एडमिशन लेते ही तीन साल के बच्चे के हाथ में दर्जनों किताबें रखी जाने लगीं। अभिभावकों ने उन्हें खुशी-खुशी खरीदा, और अब भी खरीद रहे हैं। उसके खिलाफ बोलने की किसी की हिम्मत नहीं होती।

मूल रूप से, शैक्षिक मनोविज्ञान कहता है कि पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों को लिखना नहीं चाहिए। इस उम्र में बच्चों की मांसपेशियों पर नियंत्रण नहीं होता है, इसलिए उनके हाथों में पेंसिल पकड़कर जबरदस्ती लिखना नहीं चाहिए, यह शैक्षिक मनोविज्ञान कहता है। लेकिन पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में दस-दस, बारह-बारह कॉपियां बच्चों से लिखवाकर भरवाई जाती हैं, इसके खिलाफ कोई क्यों नहीं बोलता?

हाई स्कूल स्तर पर जाने के बाद, मूल विषयों का बोझ बढ़ने के कारण छात्रों को इन अतिरिक्त किताबों की ओर देखने का भी समय नहीं मिलता। स्कूल में भी अकादमिक विषय पढ़ाने के लिए घंटे कम पड़ जाते हैं, इसलिए ये किताबें सिर्फ पैसे कमाने के लिए ही दी जाती हैं। इस तरह की सैकड़ों निरर्थक किताबों से महाराष्ट्र के अभिभावकों के घरों के आले भर गए होंगे। इतने सालों में मैंने एक भी अभिभावक को इसके खिलाफ आवाज उठाते हुए नहीं देखा। एक टीवी चैनल पर शैक्षिक विषय पर चर्चा के दौरान मैंने तत्कालीन शिक्षा मंत्री वर्षा गायकवाड़ से सार्वजनिक रूप से इस विषय पर पूछा था। उन्होंने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

अंग्रेजी माध्यम के स्कूल सोने की खान हैं। यहां विभिन्न बहानों से अभिभावकों की जेब से पैसे निकालने के तरीके संस्थाओं ने तैयार किए हैं। बेकार प्रोजेक्ट तैयार करवाना, छात्रों पर अनावश्यक वर्कबुक थोपना, बेकार विषयों की हजारों रुपये की किताबें गले मढ़ना।

विभिन्न कार्यक्रमों के बहाने अभिभावकों की जेबें ढीली करना, गैदरिंग के समय पांच मिनट के कार्यक्रम के लिए हजारों रुपये के कपड़े तैयार करवाना, यह सब महाराष्ट्र के अभिभावकों ने बिना आवाज उठाए सहन किया।

और मैंने सिर्फ इस मुद्दे पर लिखा कि जितनी ज्यादा भाषाएं आएंगी, व्यक्ति उतना ही अधिक सुसंवादी और विकसित होगा, तो सब उसके खिलाफ बोलने लगे हैं।

जब अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों ने अभिभावकों को लाखों रुपये लूटा, तब मैं लगातार इस विषय को उठाती रही। तब अभिभावकों ने मुझे समर्थन क्यों नहीं दिया?

दरअसल, हिंदी की एक किताब से ज्यादा यह गंभीर विषय था। आज भी है।

आज जिन बच्चों के बच्चे अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ रहे हैं, वे स्कूल शुरू होने के बाद अपने बच्चों को कितने विषयों की किताबों का गट्ठर मिला, इसकी सूची बनाएं और सूचित करें।

सरकार द्वारा निर्धारित किताबों से कई गुना महंगी कितनी किताबें खरीदीं, यह बताएं। इन किताबों को लेने से संस्था को मना करें। उसके खिलाफ बोलें। हिम्मत हो तो इस विषय पर आंदोलन करें, पोस्ट लिखें।

जिन अभिभावकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, लेकिन वे अपने बच्चे को पीछे न छूटने देने के लिए बेचारे अंग्रेजी माध्यम की ओर दौड़ते हैं, उन पर थोपा जाने वाला यह जजिया टैक्स पहले बंद करें। अभिभावकों को बुरी तरह लूटने वाले इस ज्वलंत विषय पर कोई बोलने वाला है क्या?

ये स्कूल यहीं नहीं रुके; उन्होंने सप्ताह के छह दिनों के लिए एक समान यूनिफॉर्म नहीं रखा। इसके बजाय, उन्होंने तीन अलग-अलग यूनिफॉर्म तैयार किए - बुधवार के लिए एक, शनिवार के लिए एक और शेष तीन दिनों के लिए एक। इस नीति के कारण, पालकों को तीन यूनिफॉर्म खरीदने के लिए मजबूर किया गया। साथ ही, स्कूलों ने यूनिफॉर्म बनाने वाली कंपनियों से भी पैसे लिए। ■

(लेखक के विचार से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।)

डॉ. सत्यवान 'सौरभ'
हरियाणा में जन्म। शिक्षा : डॉक्टरेट, राजनीति विज्ञान एवं पशु चिकित्सा में डिप्लोमा; उर्दू डिप्लोमा, पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन जर्नलिज्म। अंग्रेजी-हिंदी में समान्तर लेखन। प्रकाशित पुस्तकें : यादें-2005 (काव्य संग्रह), तितली है खामोश (दोहा संग्रह), कुदरत की पीर (हिंदी निबंध संग्रह), Issues And Pains (English Essays Collection), प्रज्ञान (बाल काव्य संग्रह), खेती किसानी और पशुधन (निबंध संग्रह)। एक दर्जन से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर रचनाओं का प्रसारण। सम्प्रति: वेटरनरी इंस्पेक्टर, हरियाणा सरकार एवं शिक्षण। सम्पर्क : satywansaurabh333@gmail.com

कोचिंग का क्रेडिट, स्कूल की गुमनामी

जब कोई छात्र इंटरव्यू में पूछे जाने पर कहता है कि "मेरी सफलता मेरे कोचिंग संस्थान की देन है" तो यह वाक्य सुनकर कहीं किसी गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ा रहा एक शिक्षक चुपचाप मुस्कुरा देता है। वह जानता है कि उसने कुछ तो सही किया होगा, तभी यह छात्र उस जगह तक पहुँच पाया है।

आज कोचिंग संस्थानों को छात्रों की सफलता का सारा श्रेय मिलता है, जबकि वे शिक्षक गुमनाम रह जाते हैं जिन्होंने वर्षों पूर्व नींव रखी। स्कूल और कॉलेजों में पढ़ाने वाले शिक्षक सिर्फ परीक्षा नहीं, सोच, भाषा और संस्कार गढ़ते हैं। कोचिंग एक पड़ाव है, पर शिक्षकों की तपस्या पूरी यात्रा का आधार। शिक्षा में श्रेय का यह असंतुलन सामाजिक और नैतिक रूप से अन्यायपूर्ण है और इसे सुधारने की सख्त ज़रूरत है।

आज जब भी कोई छात्र NEET, JEE, UPSC या अन्य प्रतियोगी परीक्षा में चयनित होता है, तो मीडिया उसकी सफलता को कोचिंग संस्थान की सफलता के रूप में प्रस्तुत करता है। बधाइयाँ, होर्डिंग्स, विज्ञापन और सोशल मीडिया पोस्ट्स, सब पर कोचिंग सेंटर का नाम चमकता है। लेकिन इस पूरे शोरगुल में वह शिक्षक खो जाते हैं, जिन्होंने कभी उस छात्र को पहली बार पेंसिल पकड़ना सिखाया था, जिसने उसे अक्षरों से परिचय कराया था, जिसने उसकी गणना और तर्क की नींव रखी थी। यह वही शिक्षक हैं जो स्कूल और कॉलेजों में वर्षों तक संघर्षरत रहकर बिना किसी विशेष संसाधन के, बच्चों में सोचने की क्षमता और आत्मविश्वास जगाते हैं।

शिक्षा कभी एक बाज़ार नहीं थी। वह गुरु और शिष्य का एक संबंध था, लेकिन जब से शिक्षा के क्षेत्र में कोचिंग संस्थानों का वर्चस्व बढ़ा है, तब से यह संबंध एक सेवा और ग्राहक का रूप ले चुका है। छात्र एक उपभोक्ता बन गया है और शिक्षक एक उत्पाद बेचने वाला। कोचिंग संस्थान अब एक ब्रांड है, जो सफलता बेचता है और स्कूल का शिक्षक सिर्फ एक सरकारी कर्मचारी, जिसे न प्रशंसा मिलती है, न मंच।

शिक्षा में यह असंतुलन क्यों? क्या एक छात्र की सफलता का संपूर्ण श्रेय सिर्फ उस कोचिंग संस्थान को दिया जाना न्यायसंगत है जहाँ वह अंतिम एक या दो वर्षों में गया? और उस स्कूल या कॉलेज की भूमिका क्या शून्य हो जाती है जहाँ उस छात्र ने जीवन के 10-12 वर्ष बिताए?

हमें यह याद रखना होगा कि कोई भी छात्र एकाएक UPSC क्लियर नहीं करता। वह प्रक्रिया कहीं कक्षा-3 की हिंदी की कविता याद करने से शुरू होती है, जब शिक्षक

> समाज में अधिकांश शिक्षक ब्रांड नहीं हैं, लेकिन ब्रह्मा की भूमिका निभाते हैं। वे कोचिंग सेंटर नहीं चलाते, लेकिन व्यक्तित्व गढ़ते हैं। जिनके नाम आज नहीं गूंजते, लेकिन जिनका असर पीढ़ियों तक रहता है।

उसकी उच्चारण की भूलें सुधारते हैं। वह गणित के पहले गुणा-भाग से शुरू होती है, जब शिक्षक उसकी उंगलियों की गिनती को गणना में बदलते हैं। ये शिक्षक किसी ब्रांड के बोर्ड तले नहीं पढ़ाते, इनकी कक्षाएँ बिना एयरकंडीशनर की होती हैं और कभी-कभी बिना पंखे के भी। लेकिन इनके पसीने से ही भविष्य की नींव तैयार होती है।

जब कोई छात्र इंटरव्यू में पूछे जाने पर कहता है कि "मेरी सफलता मेरे कोचिंग संस्थान की देन है" तो यह वाक्य सुनकर कहीं किसी गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ा रहा एक शिक्षक चुपचाप मुस्कुरा देता है। वह जानता है कि उसने कुछ तो सही किया होगा, तभी यह छात्र उस जगह तक पहुँच पाया है। लेकिन उस मुस्कान में पीड़ा छिपी होती है, उस चुप्पी में वह सवाल होते हैं जो कोई नहीं पूछता, "क्या मेरी कोई भूमिका नहीं थी?"

कोचिंग संस्थान सफलता का शॉर्टकट दे सकते हैं, लेकिन सोचने की आदत, भाषा की पकड़, सामाजिक चेतना, ये सब स्कूलों में ही पैदा होती है। विद्यालय सिर्फ परीक्षा की तैयारी नहीं कराते, वे व्यक्ति का निर्माण करते हैं। बाज़ार की भाषा में कहें तो आज शिक्षा एक 'ब्रांडेड सर्विस' बन चुकी है। कोचिंग सेंटर सफलता के ग्रॉफ के साथ खुद को बेचते हैं और सफल छात्रों को विज्ञापन की तरह इस्तेमाल करते हैं। यह शोषण का एक नया रूप है, जिसमें मेहनत किसी और की होती है और लाभ किसी और को मिलता है।

विज्ञापनों की भाषा देखिए, “हमारे यहाँ से 72 चयनित!”, “AIR-1 हमारे छात्र!”, “बिना कोचिंग के असंभव!” इन दावों में किसी स्कूल का नाम नहीं होता। किसी हिंदी, गणित या विज्ञान शिक्षक की तस्वीर नहीं होती, जिन्होंने छात्रों को अपनी सीमित तनख्वाह, खस्ताहाल स्कूल और प्रशासनिक दबावों के बीच तैयार किया। यहां एक और विडंबना है, जो छात्र जिस कोचिंग सेंटर में जाकर सफल हुआ, वह खुद एक स्कूल से आया था। उसने कभी कक्षा में बोर होकर या मस्ती करते हुए भी सीखा था। उसके व्यक्तित्व में स्कूल की प्रार्थना, शिक्षक का डांटना, लाइब्रेरी का सन्नाटा और प्रायोगिक कक्षाओं की गंध शामिल होती है। लेकिन सफलता के बाद वह स्कूल के बजाय कोचिंग की ब्रांडिंग करता है। यह ट्रेंड केवल समाज की विस्मृति को नहीं दर्शाता, यह हमारी प्राथमिकताओं की गिरावट भी दिखाता है।

मूल शिक्षक केवल क्लास रूम तक सीमित कर दिए गए हैं। उनके नाम पर न कोई स्कॉलरशिप होती है, न कोई क्रेडिट सिस्टम। वे दिनभर बोर्ड परीक्षा की कॉपियाँ जांचते हैं, चुनाव ड्यूटी निभाते हैं, मिड-डे मील के अंडे गिनते हैं और फिर भी समय निकालकर छात्रों को समझाते हैं, “कृपया अपने नाम के आगे IAS लगाओ तो एक बार स्कूल ज़रूर आना!”

कुछ शिक्षक तो इतने सरल और समर्पित होते हैं कि वे अपने छात्रों की सफलता पर गर्व तो करते हैं, लेकिन उसके सोशल मीडिया पोस्ट में अपना नाम न देखकर भी चुप रहते हैं। वे अपनी भूमिका को ईश्वर के कार्य जैसा मानते हैं, बिना श्रेय की अपेक्षा के, केवल समाज निर्माण की भावना से।

यह चुप्पी अब तोड़नी होगी। हमें एक नया सामाजिक अभियान चलाने की आवश्यकता है, जहाँ हर चयनित छात्र अपने स्कूल और वहाँ के शिक्षकों का नाम खुले मंच पर ले। प्रशासन को ऐसे नियम बनाने चाहिए जहाँ छात्रों की सफलता के साथ-साथ विद्यालय और कॉलेज का भी नाम दर्ज किया जाए। मीडिया को भी अपनी रिपोर्टिंग में कोचिंग संस्थानों के साथ-साथ उस छात्र के मूल शैक्षिक संस्थान की जानकारी देनी चाहिए। कोचिंग संस्थानों को भी नैतिक जिम्मेदारी लेनी चाहिए कि वे अपने प्रचार में उस छात्र की संपूर्ण शैक्षिक यात्रा को स्थान दें, केवल अंतिम दो वर्षों को नहीं। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो एक दिन आएगा जब हमारे विद्यालय केवल नाममात्र के रह जाएँगे और शिक्षा केवल एक महंगी सेवा बनकर रह जाएगी।

सच्चा शिक्षक वही होता है जो दीपक की तरह जलता है, ताकि सामने बैठा छात्र उजाले में देख सके। लेकिन दीपक को भी यदि निरंतर नजरअंदाज़ किया जाए, तो अंधकार स्थायी हो सकता है। समाज में अधिकांश शिक्षक ब्रांड नहीं हैं, लेकिन ब्रह्मा की भूमिका निभाते हैं। वे कोचिंग सेंटर नहीं चलाते, लेकिन व्यक्तित्व गढ़ते हैं। जिनके नाम आज नहीं गूंजते, लेकिन जिनका असर पीढ़ियों तक रहता है। अब समय आ गया है कि हम शिक्षा की गहराई में उतरें और उसके असली स्थापत्यकारों को पहचानें।■

मनीष पाण्डेय
22 जून 1979 को पचोरी, जाँजगीर-चाम्पा, छत्तीसगढ़ में जन्म। कंप्यूटर साइंस में ऍमएससी। हिंदी साहित्य से गहरा लगाव। कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्प्रति : आमेजन में सीनियर मैनेजर के पद पर कार्यरत और अलमेर, नीदरलैंड में निवास।
सम्पर्क : tomanishp@gmail.com

सयानी बहू

(छत्तीसगढ़ी लोक कथा)

एक गाँव में एक निर्धन बूढ़ा अपने तीन बेटों के साथ रहता था। वे सभी गांव में एक सेठ के यहाँ मजदूरी करते थे और रोज रात को मेहनताना के रूप में चने लेकर घर लाते और अपने-अपने चूल्हे में उसे भूनकर खाते। किसी तरह उनके दिन कट रहे थे।

उनके पड़ोसी ने बूढ़े से कहा कि तुम अपने बड़े बेटे का ब्याह कर दो, पर अपनी निर्धनता को देखकर उन्हें लगा कि पता नहीं कौन अपनी बेटी उनके घर ब्याहना चाहेगा। पड़ोसी ने उन्हें अपने किसी दूर के पहचान वाले के यहाँ का रिश्ता बताया। लड़की के माता-पिता भी निर्धन थे तो वे विवाह के लिए तैयार हो गए। लड़की ब्याह कर आई तो पड़ोसी ने उसे अपने घर पर रहने दिया लेकिन बहू ने कुछ दिन रहकर अपने पति के घर जाने की इच्छा जताई।

बहू जब अपने पति के घर आई तो कच्चे मकान के उस घर की हालत देख कर उसको बहुत दुःख हुआ, लेकिन उसने खुद को मजबूत करके उसे ठीक करने का मन बनाया। उसने सबसे पहले बाकी सभी कमरों के चूल्हे तोड़ दिए और पड़ोसी से थोड़े झाड़ू लेकर पूरे घर को साफ किया और गोबर लेकर द्वार और आँगन की लिपाई की और दीवारों पर मिट्टी लगाकर उसे चुने से पुताई कर दी। शाम को जब उसके ससुर, पति और उसके दो भाई आये तो घर की सफाई देखकर चौंक गए। उसका पति अपने कमरे में आया और बाकी तीनों भी अपने कमरों में गए तो वहां की साफ सफाई से खुश हुए लेकिन चूल्हा नहीं देखकर गुस्से में आँगन में आ गए और बड़बड़ाने लगे। उन्होंने कहा कि तुम्हारी पत्नी ने तुम्हारा चूल्हा तो रखा लेकिन हमारे चूल्हे तोड़ दिए। अब हम कैसे अपने चने भूनेंगे?

तब बहू अपने कमरे से आई और उसने अपने ससुर को पीने के लिए पानी दिया और आँगन में बिछी खाट पर बैठने को कहा। उसने ससुर और अपने दोनों देवरों को भी अपने हिस्से का चना देने को कहा ताकि वो सभी के लिए खाना बना सके। उसके बाद बहू ने चने के एक भाग को पीस कर उसके आटे से रोटी बनाई, एक भाग से चने का साग बनाया और एक भाग से चने की दाल बनाई। जब खाना बन गया तब उसने सभी को खाने के लिए बैठने को कहा और प्रेम से खाना खिलाया। सभी ने उसके स्वादिष्ट खाने की बड़ाई की और पहले उसके ऊपर नाराज होने के लिए माफी मांगी। बहू ने विनम्रता से बात की और फिर खुद भी खाना खाकर सो गई।

अगले दिन जब सब सोकर उठे तब उन्होंने देखा की बहू पहले ही उठ गई है और उसने आँगन को साफ करके उसके बीच में एक तुलसी का पौधा लगाया है जिसमें नहाकर जल चढ़ा रही थी। उसने सभी को रात की बची रोटी में से नाश्ता करने को दिया। सब हतप्रभ हो गए। और जब सभी काम पर जाने लगे तो उसने अपने पति से पूछा कि क्या आप लोगों को मजदूरी में केवल चने ही मिलते हैं तो उसके पति ने कहा कि नहीं, हम कोई भी अनाज ले सकते हैं। चने तो हम इसलिए लेते हैं क्योंकि उसको भूनकर खाना सहज पड़ता है। फिर बहू ने कहा कि आज से मजदूरी में एक हिस्सा गेहूं, एक हिस्सा चावल, एक हिस्सा दाल और एक हिस्से के पैसे लेकर आना। सबने कल रात बहू के व्यवहार को देख लिया था तो सब के मन में उसके प्रति अच्छी भावना थी और वे मान गए।

शाम को जब वे लोग घर आये तब बहू ने चावल, दाल और गेहूं के आटे की रोटी बनाई। उसने पड़ोसी से कुछ आलू मांग लिए और उसकी सब्जी बनाई। सबने फिर एक बार अच्छे से खाना खाया और बहुत की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने कमरे में सोने चले गए। कुछ दिन बीतने पर बहू ने अपने ससुर से काम पर जाने को मना किया और बोली कि आपके तीन जवान बेटे हैं तो आपको काम पर जाने क्या जरूरत है। धीरे-धीरे कर बहू ने थोड़ा बहुत धन इकट्ठा कर लिया और फिर अपने घर के सामने एक छोटी से परचून की दुकान खोल ली जिस पर उसके ससुर बैठने लगे। गांव में बाजार के दिन उसके पति और देवर मजदूरी करने की जगह खाने की दुकान लगाते जिससे उनकी अच्छी कमाई होने लगी।

सयानी बहू की सूझबूझ से उनके दिन बहुर गए और वे सब खुशी-खुशी रहने लगे।■

चित्रा गुप्ता

मेरठ विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर रघुनाथ गर्ल्स कॉलेज मेरठ में प्रवक्ता के पद पर काम किया। सिंगापुर में हिंदी सोसायटी, डीपीएस तथा स्कूल ऑफ़ द आर्ट्स में क्रमशः अध्यापन। ग्लोबल हिंदी फाउंडेशन सिंगापुर की एडवाइजर। अनेक काव्य गोष्ठियों का संचालन। कत्थक तथा चित्रकला में रुचि। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। साझा-संग्रह : सिंगापुर नवरस - नौ कवि नौ रस (सम्पादिका), कुछ सुनी कुछ अनसुनी तथा राम काव्य पीयूष। सम्प्रति www.funhindi.me पर ऑनलाइन अध्यापन तथा सिंगापुर में निवास।

सम्पर्क : madhurbhaashi@yahoo.com

मन की बात

कुछ बातें, कुछ यादें

हमारे पड़ोसी के सुपुत्र विदेश गये और दुल्हनिया भी गोरी मेम ले आये। हम सभी को उन्हें देखने की उत्सुकता रहती। स्कूल से आते ही तीन मंजिल के घर में सबसे ऊपर छत पर हम जा बैठते। वहाँ से उनका एक मंजिल के घर का का आँगन दिखाई देता था। गोरी मेम को उचक-उचक कर देखने में हमारी गर्दन में दर्द हो जाता।

मेरी माँ का व्यक्तित्व - ख़ूबसूरती और नाक का मिलाजुला रूप। नाक ऊँची रखने से ख़ूबसूरती का कोई लेना-देना नहीं था। प्यार का सागर तो उन्होंने जैसे कभी उमड़ने ही नहीं दिया। ममत्व की अभिव्यक्ति में बेहद कंजूस। बस नाक ऊँची रखने से मतलब था। हम छह बहन और एक भाई। उनका सबके साथ समान व्यवहार था। उस जमाने में भी उन्होंने लड़के-लड़की में कोई भेदभाव नहीं किया। हम सबकी पढ़ाई को लेकर वे बड़ी सख्ती से पेश आती थीं। रिजल्ट अच्छा न आने पर भाई के लिए कुछ ज्यादा सख्त थीं। वे सोचती थीं अगर हमारे अंक कम आ भी गए तो कोई बात नहीं। खाना बनाना, सीना-पिरोना, घर की सफाई जैसे काम हम बहनों के लिए ज्यादा जरूरी थे। हमारे और हमारे इकलौते भाई की परवरिश में केवल इतना ही अंतर था। उनके कठोर अनुशासन ने हम बहनों को पढ़ाई के साथ सुगृहिणी बनने की तालीम भी दी। हाँ, यह भी सच है उस समय ज़रूर उनकी वे बातें नीम की तरह कड़वी लगती थीं। उनका एक मजेदार तकिया कलाम था, जब भी हम बहनें कोई काम ठीक से नहीं कर पाती थीं तो एकदम गुर्राकर कहतीं - इस उम्र में तो मेरी शादी हो गई थी। माँ का विवाह पंद्रह वर्ष की उम्र में हो गया था। कई बार मन में आता था कि कह दूँ कि शादी करके कौन-सा तीर मार लिया। सात बच्चे पैदा कर दिए और घर के कामों में खटती रहीं। उस जमाने में कुछ कहने का मतलब बैल को लाल कपड़ा दिखाना था। आज यह सब सोचकर हँसी आती है। सच में तो मैं अम्मी - माँ को हम अम्मी कहते थे - की शुक्रगुजार हूँ। उन्होंने काफी हद तक हमें आत्मनिर्भर बना दिया था। धीरे-धीरे, एक के बाद एक सबकी शादी हो गई। माँ, भाई-भाभी के साथ सेट थीं। आम परिवारों की तरह सास-बहू की तकरार भी होती थी। पर कुल मिलाकर सब बढ़िया चल रहा था।

फ्लैश बैक में हमारे पड़ोसी के सुपुत्र विदेश गये थे। दुल्हनिया भी गोरी मेम ले आये। जब वे विदेश से आये तो पूरे मोहल्ले में गोरी मेम चर्चा का विषय थी। हमारे बाल

मन में उन्हें देखने की उत्सुकता रहती थी। हम सब भाई-बहन, मेरे चाचा-ताऊ के बच्चे भी स्कूल से आते ही तीन मंजिल के घर में सबसे ऊपर छत पर जा बैठते। वहाँ से उनका एक मंजिल के घर का का आँगन दिखाई देता था। एंगल थोड़ा टेढ़ा होता, गोरी मेम को उचक-उचक कर देखने में हमारी गर्दन में दर्द हो जाता था। ऊपर से खींचातानी सो अलग। सोती - सरनेम श्रोत्रिय था - जी की बहू ने साड़ी पहनी है। कैसी घुटनों तक उठा रखी है। अरे देखो तो कितनी बड़ी बिंदी लगा रखी है। बारी-बारी से हम सब देखते और साथ में कमेंट्री भी चलती रहती। उसके आने की खुशी में उनके घर में संगीत का कार्यक्रम रखा गया। गोरी मेम गुलाबी रंग की साड़ी में बहुत ही प्यारी लग रही थीं। सबके कहने पर - राधा ढूंढ़ रही किसी ने मेरा श्याम देखा... बिना अर्थ समझे वे बिना किसी संकोच के मग्न होकर नाच रही थीं। आज भी उनके डांस को याद करके बहुत हँसी आती है। दरअसल उन्हें साड़ी पहनकर डांस करने में उलझन हो रही थी। बार-बार साड़ी टखनों से ऊपर करके फुदक-फुदक कर डांस कर रही थी। उन दिनों और उस जमाने में यह हमारा मनोरंजन का मजेदार साधन था। कितनी खुशियाँ मिलती थीं इन छोटी-छोटी बातों से। तकनीक में उलझी नई पीढ़ी तो शायद ये हँसने की बात भी नहीं लगेगी। हो सकता है उन्हें इन बातों में फूहड़ता भी नजर आये।

उन्हें देखकर मेरी विदेश जाने की चाह बलवती हो गई। तब से मैं अक्सर हनुमान जी से प्रार्थना करती थी- 'हनुमान जी मुझे भी किसी तरह से विदेश भेज दो, हर मंगलवार को लड्डू चढ़ाऊँगी।' संयोग ऐसा बना कि विवाह के कुछ सालों बाद विदेश आ गई। मेरी मुराद पूरी हो गई पर मैंने हनुमान मंदिर में दो-चार बार ही लड्डू चढ़ाए। बस इसे मेरा आलस ही समझ लो या फिर भगवान् के मामले में मैं मतलब परस्त लोगों की तरह हो चुकी थी। वैसे राज की बात बताऊँ हनुमान जी को लड्डू चढ़ाने के वायदे का सिलसिला अभी भी जारी है।

इतने सालों में माँ भी बूढ़ी हो गई थीं। जिम्मदारियाँ नहीं रही थीं, करने को कुछ ख़ास नहीं था, फोन पर बहनें और ननदें हमेशा पूछतीं कि कब आ रही हैं? जीवन की संध्या में उनका प्यार उजागर होकर सामने आ रहा था। मुझे मेरे भाई-बहन और ननदें कितना याद करते हैं, यह सोचकर मैं मन ही मन किलकती। सच ही है बूढ़े भी बच्चों के समान हो जाते हैं। वे खासतौर पर मुझे बहुत मिस करती थीं। दरअसल मैं उनके अतीत-वर्तमान की कहानियाँ बहुत ध्यान से सुनती थी। यूं कहूँ कि उन्हें लाड़ लड़ाने में मुझे अनोखे सुख की अनुभूति मिलती थी। मैं रिश्तेदारों के मध्य नहीं रहती थी इसलिए भी मेरे पास बात करने के लिए बहुत मसाला नहीं रहता था। एक बात और मैंने अनुभव की। लोगों को श्रोता कम ही मिलते हैं, सबको अपनी बातें सुनाने की पड़ी रहती है। कुछ सीमा तक मैंने यह स्वीकार कर लिया था।

सुबह का समय था, आराम से चाय बनाते हुए गुनगुना रही थी। फोन की घंटी बजी। हैरान थी कि इतनी सुबह किसका फोन आया होगा। अम्मी को ब्रैस्ट कैंसर हो गया है, मेरी बहन ने यह दुखद खबर दी। उस समय हम दोनों बहनें रो रही थीं। गला रुँध गया, बात नहीं हो पाई। माँ साथ छोड़ जायेगी यह बात मुझे डाइजेस्ट नहीं हो रही थी, सोचकर मेरा दम घुट सा रहा था। चाय पीने का मन नहीं रहा। रुलाई रुक ही नहीं पा रही था। कार्यालय के काम से पति विदेश गये थे। बच्चे भी विदेश में पढ़ रहे थे। शाम को माँ से बात की। बहुत ही सहजता से उन्होंने कहा, हाँ कैंसर हो गया, इलाज से ठीक हो जाएगा। मेरी माँ जो हम भाई-बहनों की छोटी सी बीमारी में पिताजी का पीछा नहीं छोड़ती थीं अपनी बीमारी में कैसे इतनी सहज हो गईं? विदेश आने की खुशी अब उलझन बन गई थी। उनकी बीमारी की सोचकर मेरी आँखें भरी रहती थीं। जब जिम्मेदारियां पूरी होने पर उनके आनन्द करने के दिन आये तो विधाता ने कैंसर का तमाचा जड़ दिया। भगवान पर भी क्रोध आ रहा था।

पति से टिकट करवाया और खबर के पंद्रह दिन बाद ही माँ के पास पहुँच गई। माँ को सरप्राइज कर दिया।

इतने सालों में माँ भी बूढ़ी हो गई थीं। जिम्मदारियाँ नहीं रही थीं, करने को कुछ ख़ास नहीं था, फोन पर बहनें और ननदें हमेशा पूछतीं कि कब आ रही हैं? जीवन की संध्या में उनका प्यार उजागर होकर सामने आ रहा था।

उस दिन मैं जैसे उनसे बड़ी हो गई थी। उस दिन मैं अपनी माँ की माँ जो बन गई थीं। उनसे वो मेरी आखिरी मुलाक़ात थी। मैं स्वयं नानी-दादी बन गई हूँ पर आज भी उनकी बहुत सारी बातें और यादें अक्सर मन पर दस्तक देती रहती हैं।

कीमो के कारण उनके बाल झड़ चुके थे। बहुत इनोसेंट लग रही थीं वे। घर में भाभी और एक बहन भी थी सब मुझे देखकर हैरान और बहुत खुश हुए। माँ को तो विश्वास था कि मैं जरूर आऊँगी। दरअसल माँ ने अपनी गाँठ के बारे में बहुत देर में बताया। गाँठ ब्रेस्ट और बगल दोनों में हो गई थी। एक रात दर्द असहनीय था तब वे पिताजी के साथ डॉक्टर को दिखाने गईं। जिसे वे मामूली गाँठ समझ रहीं थीं वह तो जानलेवा बीमारी निकली। दरअसल वे सोचती थीं कि कैंसर तो जवानों को होता है वे तो बूढ़ी हैं उन्हें नहीं होगा। उन्होंने बहुत ही सहजता से मुझे बताया। हैरान थी उनको इतना शांत देखकर। जब मैंने उनके साथ एक महीने तक रहने की बात की तो वे मुस्करा उठीं। उन्होंने पिताजी से कह दिया था कि मैं ही उनके पास सोऊँगी। अब रात को मैं उनके पास ही सोती। कैंसर फेफड़ों तक पहुँच गया था। डॉक्टरों के अनुसार सर्जरी कराने का फायदा नहीं था। रात को सांस लेने में तकलीफ होती थी। प्रतिदिन लगभग रात के दो बजे से वे लेट नहीं पाती थीं। मैं कमर सहलाती या पानी देती। उस तकलीफ को अभिव्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द भी नहीं हैं। आज भी याद करके मेरी आँखें नम हो जाती हैं। रात के दो बजे से दिन निकलने तक माँ की रात बैठकर कटती। कभी मैं, कभी पिताजी और मेरी भाभी उनकी कमर सहलाते। लाचार थे हम सब। होम्योपैथिक, आयुर्वैदिक दवाएं चल रहीं थीं। ज्योतिषी की सलाह पर भी दान-पुण्य किया गया। झूठी उम्मीद में हम सब समय काट रहे थे। कभी जब रात को ज्यादा देर सो जातीं तो सोते समय कई बार मैं उनकी नाक पर हाथ लगाकर उनकी साँसों की सलामती की जाँच करती तो उठ जाती थीं। अभी तेरी माँ मरी नहीं है - उस वक्त वे आँखों से मुस्कराती। आज भी वह मुस्कराहट मेरे दिमाग में ताजा है।

मुझे नहीं पता था कि मैं उनसे फिर मिल पाऊँगी इसलिए उनके जीते जी मैंने उन्हें हरिद्वार ले जाने का निश्चय किया। माँ यह सुनकर फूली न समा रही थीं। उस दिन उनकी खुशी और उत्साह देखने लायक था। भाई को डर था कि कुछ हो गया तो क्या होगा। कुछ होना तो निश्चित था यहाँ नहीं हरिद्वार में ही सही। मैंने सोचा। टैक्सी में बैठकर हम दोनों चल दिए। मेरठ से हम हरिद्वार रुकते-रुकाते लगभग चार घंटे में पहुँचे। माँ टैक्सी में अधिकतर लेटी रहीं। उस दिन उन्हें सांस लेने में भी उतनी तकलीफ नहीं हो रही थी। उस दिन जैसे हम दोनों बीमारी को भूल गये थे।

माँ ज्यादा चल नहीं सकती थीं। बचपन में वे मेरा हाथ पकड़कर चलाती थीं उस दिन मैं उनका हाथ पकड़कर उन्हें धीरे-धीरे ले जा रही थी। सितम्बर का महीना था, अधिक सर्दी नहीं थी। मेरे मना करने पर बच्चों की तरह जिद करके उन्होंने धीरे-धीरे चलकर गंगा में स्नान भी किया। उस दिन मैं माँ बनकर उनके गीले कपड़े बदल रही थी। जीते जी तूने गंगा स्नान करा दिया, कहते हुए माँ का चेहरा शांत और प्रसन्न था। उन समय थैंक्यू का प्रचलन तो था नहीं पर माँ का चेहरा जैसे थैंक्यू कह रहा था। कुछ मंदिर भी उन्होंने देखे। माँ आँखें बंदकर हनुमान जी की मूर्ति के समक्ष खड़ी थीं। मैंने मज़ाक किया, अम्मी, क्या माँग रही थीं? तुम सबकी खुशी - उन्होंने जवाब दिया। इतनी बड़ी बीमारी के बाद भी हमारे लिए ही सोच रही थीं। सच में माँ कितनी प्यारी होती है।

माँ को दही, बेसन का चीला और गाजर का हलवा बेहद पसंद था। मैंने माँ को तीनों चीजें बाजार से खरीद कर खिलाईं। उस दिन उनके लिए कोई परहेज नहीं था। वे तीनों चीजें थोड़ी-थोड़ी ही खा पाईं। वे कुछ संकोच भी कर रही थीं। बार-बार मुझसे भी खाने का आग्रह कर रही थीं। मैंने भी उस दिन हलवा, दही और बेसन का चीला ही खाया। उस दिन मैं जैसे उनसे बड़ी हो गई थी। उस दिन मैं अपनी माँ की माँ जो बन गई थीं। उनसे वो मेरी आखिरी मुलाक़ात थी। मैं स्वयं नानी-दादी बन गई हूँ पर आज भी उनकी बहुत सारी बातें और यादें अक्सर मन पर दस्तक देती रहती हैं। माँ के दर्द को याद कर आज भी मन से आह निकलती है। यह ही सोचती हूँ जल्दी बता देतीं तो हम सब समय पर इलाज कर पाते।■

विश्वास दुबे

ग्वालियर में जन्म। इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट की उपाधियां प्राप्त कीं। हिंदी साहित्य में गहरी अभिरुचि। तीन पुस्तकें 'प्रेम और वाणी', 'एहसासों की सिलवटें', 'खास पचास' प्रकाशित। हिंदी ब्लॉग लिखते हैं। रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्प्रति - बहुराष्ट्रीय कंपनी में सॉफ्टवेयर कंसलटेंट तथा द हेग, नीदरलैंड में निवास।

सम्पर्क : vishwas.dubey@gmail.com

कहानी

हम बेवफा हरगिज़ न थे

दीपावली पर अपने घर, अपने शहर जाने का उत्साह अलग ही होता है मगर तब जब चित्त शांत हो।

घर की तरफ बढ़ती गाड़ी में बैठा प्रेम ख़यालों में डूबा था - वही पुरानी सोच कि क्यों लोग बेवफ़ा हो जाते हैं, क्या वफादार रहना इतना कठिन है। बगल में गाड़ी चलाता छोटा भाई बार-बार उसकी तरफ देख रहा था, आख़िर रहा न गया तो ख़ामोशी को तोड़ते हुए बोला- "तुम्हारे लिए घर में एक सरप्राइज इंतज़ार कर रहा है।" प्रेम को कुछ समझ नहीं आया पर उसने जानने का कोई उत्साह नहीं दिखाया, तो भाई ख़ुद ही बताता गया - "रमेश अंकल की लड़की वाणी को मम्मी-पापा ने तुम्हारे लिए पसंद किया है और वह इस बार अपने शहर नहीं जा रही, दीपावली हमारे साथ ही मनाएगी।" प्रेम ने उसे सुन कर भी अनसुना कर दिया।

घर का दरवाज़ा सजी-धजी वाणी ने ही खोला, प्रेम ने बस एक नज़र देखा, 'हैलो' का जवाब दिया और अंदर बढ़ चला अपने मम्मी-पापा की तरफ। वाणी को यह बेरुखी अजीब-सी लगी। दोनों परिवारों में महीनों पहले यह बात हो गई थी, उसे दो महीने पहले ही यह बताया गया था और वह इस पल का कब से इंतज़ार कर रही थी। ख़ैर अपने खुशमिज़ाज अंदाज़ में उसने ख़ुद को संभाला और प्रेम के पीछे-पीछे हो ली।

परिवार वाले जानबूझ कर दोनों को अकेले समय दे रहे थे पर प्रेम अमूमन शांत ही रहता था, वाणी ही कुछ न कुछ बात निकालती रही और प्रेम "हां" या "ना" में जवाब देता। जब आप किसी से पहली बार मिले हो और यह भी पता हो कि उसके साथ जीवन बिताना है, तो बहुत कुछ होता है जानने को, बात करने को, वाणी बहुत उत्साह में प्रेम के आस-पास रहते हुए उससे ज़्यादा से ज़्यादा बात करना चाह रही थी उसे समझना चाह रही थी। वाणी प्रेम को लुभाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही थी पर प्रेम था भावहीन।

वाणी ने पिछले दो महीनों में जिसकी तस्वीर देख सपने संजोए थे, वो उसके सामने था, पर बिल्कुल उदासीन पत्थर सा। वाणी, चेहरे पर मुस्कान रखे अपनी होने वाली ससुराल में उत्साह पूर्वक, त्यौहार की तैयारी में लगी थी, पकवान बना रही थी, आख़िर उसे सब का दिल भी तो जीतना था

प्रेम, वाणी की मनोदशा समझ रहा था। उसे वाणी का उत्साह, उसका लुभाना समझ नहीं आ रहा था, वाणी उसे अच्छी भी लगी, पर पुराने ज़ख्मों के बाद उसे अब किसी भी लड़की के साथ की चाह नहीं थी।

एकांत मिलते ही प्रेम ने मां से पूछा "यह सब क्या हो रहा है। मुझे नहीं करनी कोई शादी-वादी, कितनी बार कह चुका हूँ", मां ने प्यार से समझाया "बेटा यह अच्छी, संस्कारी, सुन्दर लड़की है, संभ्रांत परिवार है, लम्बे समय

> प्रेम की तबियत ख़राब हो गयी। जब हालत ज़्यादा बिगड़ी, तो नौकरी से छुट्टी ले अपने शहर अपने घर वापस आ गया और जहाँ शादी की शहनाई बजनी थी वहाँ बीमारी की मायूसी छाई थी।

से जानते हैं"। प्रेम ने आँखें तरेरी और बात ख़त्म हो गयी।

दीपावली के दिन चहकती हुई वाणी प्रेम के पास आयी और अपनी मेहँदी दिखाते हुए पूछा "अच्छी रची है ना!" वह मुस्कराया और बोला, "बहुत सुंदर है!" उसे पुराना बहुत कुछ याद आया, भीतर कुछ टूटा, लेकिन ज़ाहिर करना उसके लिए मुनासिब नहीं था ।

सब ने मिलजुल कर दीपावली का पूजन किया, जब दिए जले और पटाखे चले तो प्रेम के भीतर जैसे बहुत कुछ चुपचाप जला।

दीपावली की रात परिवार का फोटो सेशन हुआ, प्रेम और वाणी के साथ-साथ फोटो हुए और उसके बाद गानों की महफ़िल सजी, सबने अपने पसंदीदा गाने सुनाए। वाणी ने गाया "मेहबूब मेरे तू है तो दुनिया कितनी हसीं है" और सबसे अंत में प्रेम ने सुनाया "किस का रास्ता देखें, मीलों है ख़ामोशी बरसों है तन्हाई" इतने मायूस गाने के बाद महफ़िल को ख़त्म होना ही था।

प्रेम रात को लेटे हुए सोच रहा था कि कल पापा से बात करता हूँ। उस रात वाणी भी ढंग से सो न सकी और उसने निर्णय लिया कि खुल के बात करनी ही होगी ।

सुबह उठते ही प्रेम ने अपने पापा से बात की पर उन्होंने दो टूक कह दिया कि "हम ज़ुबान दे चुके हैं रमेश को बुराई क्या है, कमी क्या है लड़की में ये बताओ? कब तक पुरानी यादों में डूबे जीवन बर्बाद करोगे।"

प्रेम परेशान सा बगीचे में टहल रहा था, तभी वाणी उसके पास आयी और थोड़ा सकुचा कर कहा- "आपसे बात करनी है" प्रेम कुछ समझ पाता, उससे पहले ही वाणी ने जैसे गोली सी दाग़ दी- "क्या मैं आपको पसंद नहीं हूँ, आप मुझसे शादी नहीं करना चाहते न? जैसा भी है साफ़ साफ़ बता दीजिये।"

प्रेम अवाक् सा रह गया, कुछ लम्हों का सन्नाटा रहा और फिर ख़ुद को सँभालते हुए बोला- "ऐसा नहीं है, मुझे अपनी नौकरी से सम्बंधित कुछ चिंता है, उसी की वजह से थोड़ा परेशान हूँ, आप अन्यथा न लें, आप पसंद हैं मुझे।"

बस ये सुनना था कि वाणी के चेहरे पर लम्बी सी मुस्कराहट आयी और बोली- "मैं नाहक ही परेशान थी और हाँ आप नौकरी की चिंता न करें, गणेश जी का नाम लें, सब सही हो जायेगा।" ऐसा बोल वो घर के अंदर चल दी... उसकी चाल में एक अलग ही जोश था उड़ान थी।

प्रेम सोचता रहा, 'यह सब कैसे हुआ, उसे ख़ुद पता नहीं था, उसने ये क्यों कहा, बस जो मुँह में आया बोल दिया!'

उसी दोपहर वाणी के परिवार वाले आये, अच्छा मिलना-जुलना, हंसी-ठहाके हुए और शाम को वाणी उनके साथ अपने घर चली गयी। जाते-जाते उसने प्रेम से कहा- "मैं आपको फोन करुँगी, मेल भी, मैसेज भी लिखूंगी - जवाब देंगे न!"। प्रेम ने हामी में सर हिला दिया ।

वह अजब समय था- एक नए रिश्ते का आरम्भ हो रहा था। कौतूहल बेचैनी से भरा हुआ आरम्भ- प्रेम को समझ में आ गया कि इससे भागने का कोई रास्ता नहीं ।

दीपावली की छुट्टियां बीत गयीं प्रेम अपनी नौकरी पर वापस चला गया और जीवन का पहिया दौड़ने लगा।

हर दूसरे दिन वाणी का मेल/मैसेज आता और दस पंद्रह दिन में एक बार फ़ोन। प्रेम मेल का जवाब तो कभी न देता और फ़ोन पर भी अधिकांश "हाँ"/"ना" में जवाब देता। चुलबुली वाणी को शुरू में ये अजीब तो लगा पर बाद में उसने ये समझ लिया कि चलो ठीक है ऐसा ही स्वभाव है प्रेम का। उसकी माँ ने भी समझया कि तुम चुल बुली हो तो तुम्हारे जीवनसाथी का गंभीर रहना ही सही है।

वाणी पूरे होश-ओ-हवास में बदहवास सी खींची ही चली जा रही थी प्रेम की तरफ़। उधर प्रेम अपने अतीत की यादों से उबर नहीं पा रहा था।

वो रविवार का दिन था, प्रेम अलसायी सी दोपहर में कुछ पढ़ रहा था कि तभी उसके पापा का फोन आया और उन्होंने बताया की सगाई और शादी की तारीख़ तय हो गयी है। सभी लोग थे फ़ोन पर वाणी के परिवार वाले और वाणी भी, एक दूसरे को बधाई देने का सिलसिला चलता रहा और प्रेम एक बुत सा फ़ोन के इस तरफ "हाँ/हूँ" करता रहा।

अब तो सब तय हो गया, प्रेम ने निश्चय किया कि अतीत से बाहर निकलना होगा और नए को अपनाना होगा और इस दिशा में प्रेम ने पहला क़दम रखा, ख़ुद की और

वाणी की (दीपावली पर खींची) फोटो को निकाल फ्रेम करवा अपने सामने वाली टेबल पर रख लिया, ताकि दिन रात दर्शन हो।

प्रेम वाणी के रंग में रंग जाना चाहता था पर जितना वह उसकी तस्वीर को ग़ौर से देखता उसमें कोई और ही दिख रहा था। उसका अतीत पीछा ही न छोड़ता। फ़िल्मी गाने अभी भी किसी और की याद दिला रहे थे। जितना वह वाणी की ओर बढ़ना चाह रहा था कोई एक शक्ति थी जो उसे अभी भी पीछे ही धकेल रही थी ।

एक पल मुस्कराता मासूम सा वाणी का चेहरा उसके सामने आता और अगले ही पल भूतकाल की तेज़ बढ़ती सदायें। अब प्रेम को ये चिंता सताने लगी कि क्या वो वाणी को वैसा प्यार दे पायेगा जिसकी वो हक़दार है। क्या वो अपनी मनहूसियत से वाणी की ज़िंदगी तो ख़राब नहीं कर रहा। बस इसी पशोपेश में उसके दिन कटने लगे और रातों की नींद उड़ गयी।

जब नींद साथ छोड़ दे तब पता चलता है कि नींद के बिना जीवन है ही नहीं। नींद न आना डिप्रेशन की तरफ पहला कदम होता है - प्रेम की तबियत ख़राब हो गयी। जब हालत ज़्यादा बिगड़ी, तो नौकरी से छुट्टी ले अपने शहर अपने घर वापस आ गया और जहाँ शादी की शहनाई बजनी थी वहाँ बीमारी की मायूसी छाई थी।

बीमारी की हालत में प्रेम ने मम्मी पापा को ये स्पष्ट कर दिया कि वो ये शादी नहीं कर सकता - औलाद की बिगड़ती हालत देख, निर्णय लिया गया कि इस सगाई और शादी की बात को आगे नहीं बढ़ाते। प्रेम के परिवार वाले सिर्फ दुखी थे पर वाणी के परिजन दुखी से ज़्यादा नाराज़।

हाय ये कैसे निष्ठुर हो गए हम।

जब प्रेम की हालत में सुधार हुआ तो वो सबसे पहले वाणी से मिलना चाहता था। उससे माफ़ी मांगना चाहता था, वह वाणी से मिलने के तरीके ढूंढने लगा, उसे वाणी को समझाना था कि क्यों ये शादी न करने का निर्णय ठीक है, वह तो उसी का भला चाहता है, बताना चाहता था कि वह कभी उसे वो प्यार न दे पाता जिसकी वो हक़दार है....... पर वाणी मिलना ही नहीं चाहती थी।

उसने प्रेम के अनेकों बार किये फ़ोन का जवाब न दिया और न मिलने को राज़ी हुई।

कुछ हफ़्तों बाद एक पारिवारिक समारोह में प्रेम को वाणी दिखी, अकेले कोने में खड़ी थी पर जैसे ही उसने प्रेम को आते देखा तो तेज़ चाल से किसी से बात करने को आगे बढ़ गयी।

फ़ुर्सत में भी हमें देख मसरूफ़ हो गए
हाय हम तेरे लिए क्या फ़िज़ूल हो गए

कुछ समय बाद प्रेम अपनी नौकरी पर वापस चला गया। हर कुछ दिनों बाद वाणी को फ़ोन करता पर वह या तो फ़ोन उठाती नहीं या आवाज़ सुनते ही फ़ोन काट देती।

वाणी के दुःख का आरम्भ कठिन था। फिर दुःख पुराना हो गया। मन का आकार बनकर उसके भीतर रहने लगा। इसमें समय लगा पर यह हो गया।

प्रेम अब भी हर 20-25 दिन में फ़ोन पर बात करने की कोशिश करता। आख़िर एक दिन जैसे वाणी को दया आ गयी और उसने बात करी।

प्रेम ने जैसे ही अपना माफ़ीनामा शुरू किया, वाणी ने बात काटते हुए बोला- “हमने सुना आपने कुछ ऐसी चोट खाई है कि अब किसी लड़की को पसंद नहीं करते। अरे आपने तो हमें अपने रंग में ऐसे रंगा कि अब हम भी किसी लड़के का साथ नहीं चाहते। ख़ुद के ग़म में गुम थे आप इस तरह, फ़ुर्सत नहीं मिली हमको चाहने की। सच बताएं बहुत अरमान था शादी करने का, घर बसाने का, पर अब शायद कभी न करें। प्यार करने लगे थे आपसे तो बद्दुआ भी नहीं दे सकते पर अब ज़िंदगी भर आपसे बात नहीं करेंगे, न मिलेंगे और आप भी हमसे दूर रहिएगा। पता है आप बहुत भावुक हैं तो आपकी सजा यही है कि ज़िंदगी भर ये सोच कर तड़पियेगा कि आपने किसी का दिल तोडा है।”

इतना कह वाणी ने फ़ोन रख दिया।

प्रेम पहले सोचा करता था क्यों लोग वफ़ा नहीं कर पाते, क्यों किसी के प्रति सच्ची निष्ठा रखना इतना कठिन है, पर ख़ुद एक दिन बेवफ़ा का तमगा माथे पर लगेगा ये उम्मीद नहीं थी।

कोई बेवफा शख़्स कभी भी
खुद को बेवफा नहीं मानता
वह दुहाई देता है-
अपनी मजबूरी और हालात की
अनजाने अनसुलझे जज्बात की
ना मुकम्मल अधूरी मुलाकात की
वह बहाने बनाता है-
वह वहां लौट दोबारा आया था
जो वादा किया था सब लाया था
उसे गलत तरह से आजमाया था
वह पूछता है कि-
उसके सवालों के मिले नहीं जवाब
उसे मांगे पर खुद दिए नहीं हिसाब
उसके भी तो आखिर टूटे कुछ ख्वाब
और इस तरह
हर बेवफा खुद को सही ठहराता है
तभी रोज़ खुद से नजरे मिला पाता है।■

('प्रेम और वाणी' पुस्तक से)

अविनाश मिश्रा
मधुबनी, बिहार में जन्म। इंजीनियरिंग में स्नातक, बिजनेस मैनेजमेंट में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। हिंदी साहित्य में गहरी रुचि। कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सोशल मीडिया के अनेक मंचों पर सक्रिय। विभिन्न एनजीओ संस्थाओं से भी जुड़े हैं। सम्प्रति - आईटी कंपनी में कार्यरत एवं बर्लिन में निवास।
सम्पर्क : avinashsaggi@gmail.com

कहानी

बम्बई से बर्लिन

जर्मन भाषा उसे क्लारा से दूर कर रही थी और एक सौत-सी लगती थी। सुरेश को ये समझ आ गया कि ये भाषा सीखे बिना वो क्लारा से नज़दीकियां नहीं बढ़ा पाएगा। ये उसे सीखनी ही पड़ेगी। ये एक नए संघर्ष की शुरुआत थी और क्लारा उसकी एक प्रेरणा।

सुरेश पिछले कई वर्षों से ये सोच जी रहा था। एक बेहतर जीवन की तलाश अपने और अपनों के लिए। ये वाकई आसन नहीं था। पर इंसान जब अपने इरादे बुलंद कर ले तो कुछ भी मुमकिन है। रास्ते अपने आप बन जाते हैं और इंसान उस पर कदम बढ़ाता जाता है। सुरेश ने भी अपना कदम रख दिया - प्रवासी भारतीय से अप्रवासी भारतीय की तरफ। आख़िर ये सपना सच होते सा दिखने लगा, पर यह तो मंज़िल का पहला पड़ाव है।

यूरोप के दिसंबर की शरद ऋतु, कपकपाने बाली ठंड और लंबी रातें। हम भारतीयों के लिए सूरज का उगना सुबह लाता है और ढलना सांझ। घड़ी में सुबह के दस बजे हैं और सूरज का नामोनिशान नहीं है। कॉफी पी जाए या भोजन करूं, बड़ी असमंजस सी स्थिति बन गई है। सुरेश सोच में पड़ गया। ये यूरो हमें कहां से कह ले आया, वरना मायानगरी में भी हम खुश थे। पर ये तो अभी शुरुआत है। देखते हैं जिंदगी अब क्या लाती है।

कार्यालय का पहला दिन, सुबह जल्दी से तैयार होना। समझ नहीं आ रहा पहले दिन का पहनावा, कौन-सी कमीज और कौन-सा पेंट पहना जाये। पर इतना सोच ही क्यों रहा हूं, जो भी पहनूंगा वो तो जैकेट में छुपना ही है। सुरेश के इतने दिनों की तैयारी, उफ्फ इंसान क्या सोचता है और क्या होता है। जैसे-तैसे तैयार होकर सुरेश कार्यालय पहुंच गया।

कार्यालय का पहला दिन, इतना अच्छा स्वागत गोरी सी मुस्कान के साथ Ich bin Clara, und du की ध्वनि ने सारी थकन मिटा दी। सब दुःख दूर हो गये। सपना सच लगने सा लगा। सुरेश ख्यालों के भवर में घुस गया। इतना अच्छा काम और व्यवहार कुशल सहकर्मी, पता नहीं हिंदुस्तानी ज्यादा व्यवहारिक है या ये लोग? आज एक सप्ताह बीत गया, कार्यालय में सब ठीक ही चल रहा था लेकिन ये जर्मन भाषा क्लारा से दूर कर रही थी। ये एक सौत सी लगने लगी थी। सुरेश को ये समझ आ गया कि ये भाषा सीखे बिना वो क्लारा से नज़दीकियां नहीं बढ़ा पाएगा। ये भाषा उसे सीखनी ही पड़ेगी। ये एक नए संघर्ष की शुरुआत थी और क्लारा उसकी एक प्रेरणा।

चार महीने हो गए और जर्मन भाषा समझ नहीं आ रही है। उसका जोश ठंडा हो रहा था। लेकिन ये आता हुआ मौसम, हर जगह रंग बिरंगे फूल। बदले मौसम के मिजाज। सब कुछ फिर से अच्छा लगने लगा। ये मोटे जैकेट उतर गए। लम्बी रातों की जगह लम्बे दिन ने ले ली।

एक वर्ष बीत गया। इसमें सुरेश ने A1 की शुरुआत से लेकर A2 तक की भाषा का सफर पूरा किया है। Ich bin Clara से Ich liebe dich Clara तक का सफर। अपने आपको जर्मन माहौल में ढालना आसान नहीं था। कड़ी मेहनत और आगे बढ़ने का जज्बा रंग लाया। अब सुरेश और क्लारा एक संग सपने देखने लगे थे, एक-दूसरे को समझने लगे हैं। ये रिश्ता भावना से ज्यादा सम्मान का बन चुका था। जर्मनी ने सुरेश के दृष्टिकोण को बदल दिया। क्लारा की नज़र में हिंदुस्तान बहुत ही ख़ूबसूरत था। और उसको हिंदुस्तान में योगा सीखना था। साथ में वाराणसी की गंगा आरती भी करनी थी। लेकिन सबसे पहले सुरेश को अपने इस रिश्ते को मां और पापा की मुहर लगानी थी। तैयारी जोर शोर से चल रही थी। क्लारा के लिए हिंदुस्तान जाना एक सपने जैसा था, वो बचपन से ही भारत में रुचि रखती थी। जर्मन लोगों की ही तरह उसे भी किताब पढ़ने का बहुत शौक था। क्लारा ने भारतीय विचारधारा पर काफी किताबें पढ़ी थीं।

सुरेश अपनी माँ और पापा को क्लारा रूपी उपहार देना चाह रहा था, लेकिन ये आसान नहीं था। हालांकि सुरेश दृढ़ निश्चय का पक्का था। होली बहुत ही पास थी और इसी अवसर पे सुरेश और क्लारा हिंदुस्तान जा रहे थे।

पंद्रह मार्च का दिन आ गया। यात्रा प्रारम्भ हुई। ख़ुशी ख़ुशी दोनों ने सफ़र की शुरूआत की। कुल नौ घंटे का सफर तय करना था बर्लिन से बॉम्बे का, बहुत सारी उम्मीदों के साथ। सुरेश और क्लारा सफर की तैयारी में काफी थक चुके थे, आंखें नींद से बोझिल हुई जा रही थी। पर आने वाले कल की ख़ुशनुमा कल्पना आँखें बंद नहीं होने दे रही थी। इंसान की प्रवृत्ति ही ऐसी है, उसको दु:ख भी संभलता नहीं और ख़ुशी भी फलती नहीं।

बंबई में विमान का आगमन सुबह के चार बजे हुआ। सुरेश के घर वाले बेसब्री से उसका इंतजार कर रहे थे।

> क्लारा ने हिंदू विचारधारा पर काफी किताबें पढ़ी थीं और सुरेश अपनी माँ-पापा को क्लारा रुपी उपहार देना चाह रहा था। ये आसान नहीं था लेकिन सुरेश दृढ़ निश्चय का पक्का था।

सुरेश के मम्मी-पापा और बहन विमानतल उन्हें लेने आये। आख़िर इतने दिनों बाद उनकी आँखों का तारा स्वदेश आ रहा था।

सुरेश को देखते ही उसकी मां की आंखों से ख़ुशी से आंसू छलक पड़े। मां ने बेटे को झट गले से लगा लिया और दोनों ने एक-दूसरे का अश्रुपूरित नयनों से स्वागत किया। सुरेश ने अपनी माँ से कहा, "माँ इससे मिलो ये क्लारा हैं मेरी सबसे अच्छी दोस्त। क्लारा को हिंदुस्तान में बहुत दिलचप्सी है।" पापा ने सुरेश की तरफ तीखी नज़रों से देखा। उन्हें दाल में काला नज़र आ रहा था। सुरेश के पापा ने कहा चलो घर चल कर बात करते हैं। तुम लोग भी काफी थक चुके होगे।

घर पहुंचकर सबने खाना खाया। क्लारा ने जिंदगी में पहली बार हिंदुस्तानी भोजन का स्वाद लिया। उसकी आंखें मिर्च-सी सुर्ख लाल हो गई थी। लेकिन चम्मच रुक नहीं रही थी। सब लोग उसकी तरफ व्याकुल नजर से देख रहे थे। लेकिन क्लारा तो हिंदुस्तानी जायके में खो गई थी। भोजन उपरांत सब लोग सोने चले गए।

अगली सुबह सुरेश की मां ने सुरेश से पूछा बेटा सच सच बता, क्लारा तेरी दोस्त ही है या कुछ और भी है। सुरेश बचपन से संकोची था। इतनी जल्दी कहाँ उसके ज़ेहन से बात उतरने वाली थी। उसने कहा नहीं माँ जर्मनी में हिंदुस्तान जैसा नहीं है। वहाँ के लोग काफी खुले विचारधारा के हैं। क्लारा तो मेरी बस बहुत अच्छी दोस्त है और उसको हिंदुस्तान में बहुत दिलचस्पी है। इतने में पापा आ गए। उन्होंने कहा सुरेश मुझसे कुछ न छुपा, हम लोग भी बॉम्बे के खुले विचारधारा वाले लोग हैं। अगर तुझे क्लारा अच्छी लगती है तो हमलोग को कोई आपत्ति नहीं है। विचार तुझे करना है, जीवन तेरा है। सुरेश को इसकी कतई उम्मीद नहीं थी। मेरे पापा इतने अच्छे कैसे हो सकते हैं। हर बाप जो अपने बच्चे को हिंदुस्तान से बाहर जाने की अनुमति देता है वो चाहकर या न चाहकर भी उसे एक अलग स्वतंत्रता प्रदान करता है और उसे खुद भी बदलना पड़ता है।

सुरेश ने जब ये क्लारा को बताया तो उनकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। झट से क्लारा ने सुरेश के माँ और पापा के पैर छू लिए। उन्हें बड़ा अचम्भा लगा। विदेशी लड़की में ये गुण, उन्होंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। सब कुछ अपने आप होता जा रहा था।

कुछ दिनों बाद छुट्टियाँ ख़त्म हो गई। सुरेश और क्लारा को जर्मनी जाना था। दोनों ने जो सोचा था वैसा ही हुआ। उनके रिश्ते को माँ-पापा की मुहर लग चुकी थी। दोनों ख़ुशी-ख़ुशी जर्मनी के लिए निकल पड़े।■

डॉ. मधुलिका बेन पटेल
गाँव डेहरी कलां, सोनभद्र, उत्तरप्रदेश में जन्म। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बीए, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एम.ए., एम.फिल. तथा पी.एच.डी.। "प्रतिबंधित हिन्दी कवितायें" पुस्तक प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ एवं आलेख प्रकाशित। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भागीदारी। "महादेवी वर्मा विशेष रचनात्मकता पुरस्कार" से सम्मानित। सम्प्रति - सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय।
सम्पर्क : ben.madhulika@gmail.com

पुस्तकायन

सिनेमाई गंभीर पाठ

सिनेमा को पढ़ते हुए, पुस्तक लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज द्वारा 2024 ईस्वी में प्रकाशित है। इस पुस्तक में सिनेमा पटल के गंभीर पाठ एवं विश्लेषण को कुल चार हिस्से में बांटा गया है। पुस्तक के शुरुआत में प्रसिद्ध पर्यावरणीय कवि एवं अध्येता राकेश कबीर द्वारा भावनात्मक प्रस्तावना लिखी गयी है। इसमें सिनेमा को लेकर युवा होते मन की हूक दर्ज है। पुस्तक की भूमिका में लेखिका शिवानी राकेश इस पुस्तक के बारे में पहले ही बहुत कुछ स्पष्ट कर देती हैं। इसका प्रथम हिस्सा सिनेमा का गंभीर एवं तथ्यात्मक इतिहास प्रस्तुत करता है। यह हिस्सा कुल 30 पृष्ठों में फैला है और इसे सुविधानुसार 14 उप बिंदुओं में बांटा गया है। इनमें सिनेमा के आरंभिक वर्ष, मूक सिनेमा का दौर : (1913 से 1931), टॉकीज (1930 -1940 के दशक) की फ़िल्में और विधिक विषय, आजादी के बाद का सिनेमा, हिंदी सिनेमा में महिलाओं का चित्रण, भारतीय सिनेमा और सामाजिक मुद्दे, भारतीय सिनेमा में मुसलमान, भारतीय सिनेमा में गांव, मध्य वर्ग और भारतीय सिनेमा, राष्ट्रीय एकीकरण और मध्य वर्ग का सिनेमा, एंग्री यंग मैन का उद्भव कारण और प्रभाव, आज का बॉलीवुड, भारतीय सिनेमा का इतिहास : एक निष्कर्ष ओटीटी का उदय और बॉलीवुड सिनेमा आदि पर विशद, तथ्यात्मक एवं गंभीर जानकारी संग्रहित की गई है। सिनेमा में महिलाएं शीर्षक के अंतर्गत कुल 8 लेख शामिल किए गए हैं जिनमें बॉलीवुड में महिला केंद्रित सिनेमा और समाज, परंपरा और पाखंड से दबी सिनेमा की बहुएं, सिनेमा में औरतों का संघर्षमय जीवन, किराए की कोख और सिनेमा, बॉलीवुड में महिला जासूस एवं राजी, बॉलीवुड सिनेमा में तलाक आजादी या वंचना, महिलाओं की संवेदना एवं जैव विविधता: सिनेमा के संदर्भ में, टूटती हुई जमींदारी की चारदीवारी में घुटती हुई महिलाएं शामिल है।

बॉलीवुड में महिला केंद्रित सिनेमा और समाज की चर्चा करते हुए लेखिका सिनेमा को महिलाओं के मुद्दों के मद्देनजर देखती हैं। बॉलीवुड सिनेमा का इतिहास 100 साल से ज्यादा पुराना है और महिलाओं के मुद्दों को लेकर समय-समय पर महत्वपूर्ण फिल्में भी बनी हैं। एक ऑडियो विजुअल कला के माध्यम के रूप में फिल्मों के विषय वस्तु से महिलाओं के बारे में समाज की भेदभावपूर्ण दृष्टि वह सोच तथा पूर्वाग्रह भी चित्रित होते हैं। इस बिंदु में महिलाओं के मुद्दों को लेकर बनी फिल्मों की सूची भी दी गई है। इसके निष्कर्ष में लेखिका ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है - मातृ शक्ति के पूजन का विशाल आयोजन करने वाला भारतीय समाज महिलाओं के अलौकिक शक्ति वाले और रहस्यमय नकारात्मक शक्ति वाली चुड़ैल रूपों से ही डरता है सामान्य स्त्री से नहीं।

अगले बिंदु में लेखिका ने प्रवास और भारतीय सिनेमा जैसे महत्वपूर्ण बिंदु पर सारगर्भित एवं जानकारी से भरपूर

चर्चा की है। इस बिंदु के अंतर्गत कुल 5 उप बिंदु हैं- प्रवास का सिनेमा और भारतीय महिलाएं: अरुण राजे पाटिल की 'रिहाई', सिनेमा में प्रवासी भारतीय, केरल से दुबई प्रवास और मलयालम सिनेमा, गिरमिटिया और मजदूर और उनका सिनेमा, दक्षिण पूर्व एशिया में महिलाओं का प्रवास और सिनेमा आदि के संबंध में ज्ञानवर्धक चर्चा है।

अगले बिंदु में विश्व सिनेमा में युद्ध विस्थापन एवं प्रवास में नौ आलेख हैं- युद्ध विस्थापन और सिनेमा, बॉलीवुड में युद्ध का सिनेमा : देशभक्ति बना मनोरंजन, भारत-पाकिस्तान संबंध और बॉलीवुड, सिनेमा में अफ़ग़ानिस्तान तालिबान और महिलाएं, पश्चिम एशिया से मध्यकारी पलायन और सिनेमा, तुर्की के विस्थापितों का सिनेमाई आख्यान, तौफीक बसर और निर्वाचन में तुर्की सिनेमा, अमेरिका में मैक्सिकन प्रवासी और उनका 'चिकानो' सिनेमा, फ्रांस में उत्तरी अफ्रीका के प्रवासी और 'बेउर सिनेमा' आदि पर विस्तृत चर्चा की गई है। पुस्तक के आखिरी हिस्से में सिनेमा में अन्य मुद्दों पर चर्चा की गई है इसके अंतर्गत दो लेख हैं जिनमें डॉक्टर मरीज संबंध और सिनेमा तथा बॉलीवुड में रोड मूवीस और सड़क के मुद्दे शामिल हैं।

इस पुस्तक में लेखिका शिवानी राकेश द्वारा विविध पहलुओं पर चर्चा हुई है। महिलाओं के संघर्षमय जीवन की चर्चा करते हुए वह लिखती हैं कि गैर बराबरी के समर्थक समाज में महिलाओं को आजीवन अपने मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। दुनिया भर में धार्मिक, जातीय, क्षेत्रीय विविधताओं ने महिलाओं के विरुद्ध अनेक अपराध किए हैं। वास्तविक घटनाओं को केंद्र में रखकर कुछ संजीदा फिल्मकारों ने शोषण के विरुद्ध औरतों के संघर्षों पर फिल्मों का निर्माण किया है। बॉलीवुड सिनेमा के भीतर अलग-अलग दृष्टिकोण की चर्चा भी इस पुस्तक में है। जैसा कि रचनाकार इस पुस्तक की भूमिका में ही स्पष्ट कर देती हैं कि सिनेमा को वह एक अलग दृष्टिकोण से देखती हैं। वह लिखती हैं - सिनेमा मेरे लिए एक ऐसे सम्मोहक कला का माध्यम है जिसमें मैं मनोरंजन से इतर भीतर तक डूबती रही हूं। मेरे लिए यह महाकाव्य से तुलनीय है। दो से तीन घंटे के बीच में एक लंबे कालखंड और समय की तमाम अच्छी बुरी प्रवृत्तियों को अपने भीतर समेट लेने की क्षमता इसे दूसरे कला माध्यमों से अलग बनाती है।

सिनेमा जितना आकर्षक है उतना प्रभावकारी भी। समय की लहर को थाम कर अपनी ओर मोड़ लेने की क्षमता है इसमें। किरदारों के जीवंत अभिनय उम्र भर नहीं भूलते। दृश्य-श्रव्य माध्यम की ताकत बहुत है। शिवानी राकेश लिखती हैं कि इस किताब पर काम करते हुए अनेक लोगों से बात करने के क्रम में मैं सिनेमा के चमत्कारिक असर को उनकी आंखों में महसूस किया है। सिनेमा पर बात करने भर से लोगों के भीतर एक किस्सागो या अभिनेता जागने लगता है तो कुछ अभिनेताओं का अनुकरण करते हुए उन चित्रों की विविध भंगिमा को जस का तस प्रस्तुत कर देने की चाहत है। वाकई में सिनेमा बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इस संबंध में राकेश कबीर भी चर्चा करते हुए लिखते हैं कि ऑडियो विजुअल माध्यम होने के कारण सिनेमा का प्रभाव व्यापक एवं स्थाई होता है। इसलिए फिल्मों की विविध विषय-वस्तु और एजेंडे को समझना बहुत जरूरी है। इस पुस्तक में इस प्रभावकारी विषय का गंभीर पाठ प्रस्तुत कर शिवानी राकेश ने बहुत ही महत्वपूर्ण एवं शोधपरक पुस्तक को पाठकों के हाथ में सौंपा है। दिनेश श्रीनेत ने इसके ऊपर एक खूबसूरत टिप्पणी की है। वह लिखते हैं कि सामान्य दर्शक फिल्मों को सिर्फ मनोरंजन दृश्य माध्यम के रूप में देखा है लेकिन शिवानी राकेश की इस किताब की मूल स्थापना ही रही है कि फिल्में सिर्फ देखी ही नहीं जाती बल्कि पढ़ी भी जाती हैं।

यहां शीर्षकों के बीच उप शीर्षकों की योजना पुस्तक को सहज एवं स्पष्ट और बेहतरीन बनाती है। यदि चर्चा करें तो ढेरों मुद्दे यहां मिल जाते हैं जिन्हें इस पुस्तक में शामिल किया गया है, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं- वास्तविक मुद्दों का फिल्मी प्रक्षेपण, महिला मुद्दों को उठाती प्रमुख बॉलीवुड फिल्में, प्रमुख महिला निर्देशक, महिलाओं के प्रति न्याय के एजेंडे पर बना सिनेमा, महिलाओं के त्रासदियों के अनेक रूप, किराए की कोख और सिनेमा : एक औरत के सम्मान का झूठा दम्भ और एक औरत की गरीबी का सौदा, कल्चरल लैग बना समाज और तकनीक, जासूसी फिल्में, देशभक्ति तलाक व सिनेमा, प्रवास के विभिन्न रूप एवं सिनेमा, बॉलीवुड सिनेमा एवं भारतीय दृष्टिकोण, सिनेमा और गल्फ का रिश्ता, गिरमिटिया मजदूर संबंधी फिल्में, विश्व सिनेमा के सार्थक रूप समेत तमाम पहलुओं को इसमें शामिल किया गया है। कुल मिलाकर यह पुस्तक बॉलीवुड सिनेमा के व्यापक पटल पर गंभीर चर्चा प्रस्तुत करती है। सिनेमा पर यदि गम्भीर जानकारी चाहिए तो यह पुस्तक अति सर्वश्रेष्ठ पुस्तक साबित होती है। पुस्तक की भाषा ऐसी है जिसमें तमाम तथ्यपरक सूचनाएं होते हुए भी यह बड़ी सहज प्रतीत होती है। इसमें समाज एवं उसकी सोच, पूर्वाग्रह एवं उत्थान पर विशेष चर्चा है। सिनेमा के संबंध में जानकारी लेने वाले पाठकों के लिए यह यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। ■

पुस्तक : सिनेमा को पढ़ते हुए
लेखिका : शिवानी राकेश
प्रकाशक : लोकभारती पेपरबैक्स, प्रयागराज
संस्करण : 2024, मूल्य : 399

नेहा शर्मा
10 जनवरी को जन्म। ग्राफिक डिजाइन में उपाधि प्राप्त की। हिंदी साहित्य से गहरा लगाव। कविताएँ और कहानियाँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा साझा संकलन में प्रकाशित। ब्लॉग : nehasharma2.blogspot.in का संचालन। अनेक संस्थाओं से पुरस्कृत। सम्प्रति : सृजन एवं दुबई में निवास।
सम्पर्क : sharmanehabhardwaj@gmail.com

कविता

अंजान

पहाड़ों के ऊपर से निकलता धुंधला प्रकाश
जब हृदय के अंदर तक पहुंचता है
उस वक्त आत्मसात होकर
ईश्वर याद आता है

याद आता है आँखें बंद कर खो जाना
उस दिव्य शक्ति में
जिसे खोजने निकला है मन
संत का रूप धरकर

मन संत न हुआ
मनकों की तरह बस
पढ़ा जा रहा था
अन्तस तक बस भीगे थे नयन

वो नयन जो तरस रहे थे
पर्वत के फटने के लिए
जो असीम शक्ति चाहिए उसे
खोने से बेहतर था उसे समा लेना

रिस रहे थे जख्म
जो माया में कैद थे
जल रहा था हृदय
आस थी तो बस उस झलक की
जिसे दुनिया अलग-अलग नामों से पुकारती है

मेरे होंठ थर-थरा रहे थे
लेना चाहते थे नाम
तभी मुझे आगोश में लेकर नींद ने कहा था
मैं चली हूं साथ अब तुझे तेरे मुकाम से दूर कर
स्वप्न में तुझे डुबा दूंगी

जिद्दी थी वह जीवन का अर्थ जानकर
चेहरे पर झूठ ओढ़ लिया
सच का हाथ खुदा ने पकड़कर
अपने नाम से रूबरू कराया

अब मैं और खुदा दोनों ही आकाश की गहराई से
धरती के अंदर तक एक-दूसरे को खोजते हैं।
■

डॉ. सरवनन थंगराजन

हार्वर्ड से प्रशिक्षित वैश्विक स्वास्थ्य शोधकर्ता, रणनीतिक नीति सलाहकार। WHO में डिमेंशिया रिसर्च पर विशेषज्ञ समिति के सदस्य। यूके के वेलकम ट्रस्ट में जलवायु और स्वास्थ्य सलाहकार समिति में शामिल। मातृ मानसिक स्वास्थ्य, जलवायु समानता और विकलांगता समावेशन में उपक्रम का नेतृत्व करते हैं। उभरते कवि। कविताएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्पर्क : saravanan_thangarajan@hms.harvard.edu

तमिल कविता

सीमाओं से परे शांति

अनुवाद : डॉ. सरवनन थंगराजन एवं अमनदीप सिंह

सीमा पर जलने वाली आग
शांत हो जाएँ
कावेरी की शीतल हवा से
उसे ठंडक मिले
शत्रुता के अंधेरे दूर हो जाएँ
और शांति का उज्ज्वल पथ
प्रज्वलित हो

युद्ध की पकड़ में फंसे जीवन मुक्त हों
आशा के मधुर रस के साथ स्वतंत्र बहें
करुणा की हवाएँ तब तक हल्के से बहें
जब तक सभी हृदय एक साथ न गूंज उठें

सीमा कोई पत्थर पर
अंकित रेखा नहीं
यह स्मृति के मोड़ों पर
बहती एक पगडंडी है
जैसे नदी किनारे के वृक्ष
नदियों के संगम
और एकता का गीत गाते हैं
वैसे ही मानवता का संगीत
हमारे भीतर गूंजे

शांति सीमाओं पर
नहीं मिलती
यह एक संगीत की गूंज है
जो हम सब में जीवित है।

शाहब अहमद
एबटाबाद, पाकिस्तान में जन्म। बी.एस.सी. और एम.एस.सी.। कॉलेज के जमाने से ही साहित्य सृजन प्रारंभ। कुछ समय के लिए तालीम से भी जुड़े रहे। कवि कर्म के साथ ही पक्षियों, वन्यजीवों और फूलों की फोटोग्राफी का शौक। यूट्यूब चैनल 'अरमुगान-ए-शहाब' पर कविताएं प्रकाशित। तीन दशकों से बैन-उल-अक़वामी कंपनी से जुड़े हैं। सम्प्रति - शुमाली, यूएसए में निवास।
सम्पर्क : shahab.ahmad@siemens-healthineers.com

ग़ज़ल

बनीं हुजूम से लश्कर, चलो चलें हम सब
क़दम, क़दम से मिला कर, चलो चलें हम सब

फ़साद फैल ना जाये तमाम खित्ते में
उड़ाईं अमन कबूतर, चलो चलें हम सब

हज़ार नौ सितम हैं समाज में फैले
फ़लाह उन में मुक़द्दर, चलो चलें हम सब

ये एक नुक़्ता कि कैसे फ़लाह हो सबकी
करें ईसी पे तदब्बुर, चलो चलें हम सब

जिहाद इलम-ओ-हुनर से करें ज़माने में
ब दिखाएंगे इलम के जोहर, चलो चलें हम सब

नफ़ीस क़ौमों में अपना मुक़ाम अव्वल हो
चुनें वो ख़ुलक के गौहर, चलो चलें हम सब

बिहार जब लाएंगे जो दुनिया में अमन की यकसर
उगाएँ ऐसे सनोबर, चलो चलें हम सब

हुक़ूक़ अपने ना छोड़ें, ना मुश्तइल ही हूँ
बनीं यूं सब्र के पैकर, चलो चलें हम सब

उफ़ुक़ पे सुब्ह-ए-दरख़्शाँ है अमन की लोगो
ब दिखाएंगे बच्चों को मंज़र, चलो चलें हम सब

जो मसखरे हैं उन्हें मसनदें नहीं सौंपें
चुनें सदूर मुदब्बिर, चलो चलें हम सब

शहाब रशक तो आता है अहल मग़रिब पर
सुकून-ओ-अमन है घर-घर, चलो चलें हम सब

जो इश्तिआल दिलाए हमें कोई लीडर
तो फैंकीं अंडे, टमाटर, चलो चलें हम सब।
■